श्रीकृष्ण-सन्देश
पौरुषाङ्क
वर्ष : ६
अंक : १

निगमामृत

श्रद्धा-सूक्त : ऋग्वेद १०.१५१

१.

श्रद्धयाग्निः समिद्ध्यते श्रद्धया हूयते हविः ।
श्रद्धां भगस्य मूर्धनि वचसा वेदयामसि ।।

श्रद्धासे ही अग्निहोत्रकी होती दीपित आग,
श्रद्धासे ही अर्पित होता उसमें हविका भाग ।
धन-ऐश्वर्योंके मस्तकपर श्रद्धा रहो विराज,
श्रुति-वाणीसे विज्ञापन यह हम करते हैं आज ।।

२.

प्रियं श्रद्धे ददतः प्रियं श्रद्धे दिदासतः ।
प्रियं भोज्येषु यज्वस्विदं म उदितं कृधि ।।

श्रद्धे ! दाताके हित कर तू अभिमत फलका दान,
देनेकी इच्छावालेको भी प्रिय वस्तु प्रदान ।
भोगप्राप्तिके अभिलाषी जो याज्ञिक मेरे इष्ट,
इनका भी पूर्वोक्त रूपसे कर दे पूर्ण अभीष्ट ।।

दूरभाष : ३३८

श्रीहरिः

श्रीकृष्ण-सन्देश

श्रीकृष्ण-जन्मस्थान
मथुरा (उ० प्र०)

प्रिय महोदय,

बड़े खेदके साथ सूचित करना पड़ता है कि "श्रीकृष्ण-सन्देश" के आठवें वर्षका बारहवाँ अर्थात् जुलाई १९७३ का अंक यथासमय मुद्रित हो जानेपर भी अबतक आपकी सेवामें प्रेषित नहीं किया जा सका। रेलोंकी हड़तालके कारण अंकके बंडल वाराणसीसे मथुरा न पहुँचकर कहीं अन्यत्र चले गये हैं। उनकी खोज की जा रही है, यदि मिल गये तो अंक पाठकोंकी सेवामें भेज दिये जायँगे, अन्यथा उन्हें पुनः मुद्रित करवाकर प्रेषित किया जायगा।

नये वर्षका विशेषांक आपकी सेवामें प्रस्तुत है। आपसे प्रार्थना है कि यदि आपने इस वर्षका शुल्क न भेजा हो तो कृपया शीघ्र मनीआर्डर द्वारा भेजनेका कष्ट उठायें और अपने कुछ इष्ट-मित्रोंको भी ग्राहक बनानेकी कृपा करें। आपका सहयोग "श्रीकृष्ण-सन्देश" को संबल प्रदान करेगा।

भवदीय—
प्रबन्ध-सम्पादक
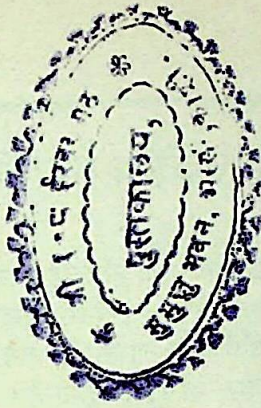
श्रीकृष्ण-सन्देश

धर्म, अध्यात्म, साहित्य
एवं संस्कृति-प्रधान
मासिक पत्र

प्रवर्तक
पुण्यश्लोक जुगलकिशोर बिरला

वर्ष : ९ अङ्क : १
अगस्त, १९७३
श्रीकृष्ण-संवत् ५१९८

वार्षिक : ७ रु०
आजीवन : १५१ रु०

प्रकाशक
श्रीकृष्ण-जन्मस्थान-सेवासंघ
मथुरा
दूरभाष : ३३८

‘श्रीकृष्ण-सन्देश’के उद्देश्य तथा नियम

उद्देश्य : धर्म, अध्यात्म, भक्ति, साहित्य एवं संस्कृति-सम्बन्धी लेखों द्वारा जनताको सुपथपर चलनेकी प्रेरणा देना और जनमानसमें सदाचार, सद्विचार, राष्ट्रप्रेम, आस्तिक्य, समाजसेवा, सर्वाङ्गीण समुन्नति तथा युगके अनुरूप कर्तव्यबोध जाग्रत् करना ‘श्रीकृष्ण-सन्देश’ का शुभ उद्देश्य है।

• नियम : उद्देश्यमें कथित विषयोंसे संबद्ध श्रुति, स्मृति, पुराण आदिके अविरुद्ध तथा आक्षेपरहित एवं लोककल्याणमें सहायक लेख ही इस पत्रिकामें प्रकाशित होते हैं। लेखोंमें काट-छाँट, परिवर्तन-परिवर्धन आदि करने अथवा उन्हें न छापनेका संपूर्ण अधिकार सम्पादकको है। अस्वीकृत लेख बिना माँगे नहीं लौटाये जाते। वापसीके लिए टिकट भेजना अनिवार्य है। लेखमें प्रकाशित विचारके लिए लेखक ही उत्तरदायी है, सम्पादक नहीं।

लेखक उद्देश्यमें निर्दिष्ट विषयपर ही उत्तम विचारपूर्ण लेख भेजें। लेख स्वच्छ और सुपाठ्य अक्षरोंमें कागजके एक पृष्ठपर बायें हाशिया छोड़कर लिखा होना चाहिए। लेखका कलेवर अधिक बड़ा न रहे। सामग्री सुन्दर, सामयिक तथा प्रेरणाप्रद हो। लेख ‘सम्पादक’ ‘श्रीकृष्ण-सन्देश’ रू० नं० ६, कैलगढ़ कालोनी, जगतगंज, वाराणसीके पतेपर भेजें।

• ‘श्रीकृष्ण-सन्देश’ अगस्त माससे प्रारम्भ होकर प्रत्येक मासकी पहली तारीखको प्रकाशित होता है, इसका वार्षिक मूल्य ७) है। जो लोग एक सौ इक्यावन रुपये एक साथ एकबार जमा कर देते हैं, वे इसके आजीवन ग्राहक माने जाते हैं। उन्हें उसी चन्देमें उनके जीवनभर ‘श्रीकृष्ण-सन्देश’ मिलता रहेगा।

ग्राहकको अपना नाम पता सुस्पष्ट लिखना चाहिए। ७) चंदा मनिआर्डर द्वारा अग्रिम भेजकर ग्राहक बनना चाहिए। वी० पी० द्वारा अंक जानेमें अनावश्यक विलम्ब तथा व्यय होता है।

• विज्ञापन : इसमें उत्तमोत्तम समाजोपयोगी वस्तुओंका ही विज्ञापन दिया जाता है। अश्लील, जादू-टोने आदि तथा मादक द्रव्योंके विज्ञापन नहीं छपते। विज्ञापन पूरे पृष्ठपर छपनेके लिए ५००) रुपये तथा आधे पृष्ठपर छपनेके लिए ३००) रुपये भेजना अनिवार्य है।

पत्र-व्यवहारका पता :
व्यवस्थापक—‘श्रीकृष्ण-सन्देश’
श्रीकृष्ण-जन्मस्थान-सेवासंघ
मथुरा

अनुक्रम

●

मासिक व्रत-पर्व एवं महोत्सव

[संवत् २०३० भाद्रपद कृष्ण अष्टमी मंगलवार २१-८-'७३ से आश्विन कृष्ण नवमी गुरुवार २०-९-'७३ तक]

अगस्त : १९७३

दिनांक	वार	व्रतपर्व
२१	मंगलवार	श्रीकृष्णजन्माष्टमी व्रत
२४	शुक्रवार	विजया एकादशी व्रत, सबके लिए।
२५	शनिवार	शनि-प्रदोष व्रत।
२६	रविवार	मासशिवरात्रि व्रत।
२७	सोमवार	श्राद्धके लिए अमावास्या।
२८	मंगलवार	स्नान-दानके लिए अमावास्या, कुशोत्पाटिनी अमा०।
३०	गुरुवार	हरितालिका (तीज) व्रत, गौरी-तृतीया ३ व्रत।
३१	शुक्रवार	श्रीगणेशचतुर्थी-व्रत।

सितम्बर : १९७३

दिनांक	वार	व्रतपर्व
१	शनिवार	ऋषिपञ्चमी व्रत।
३	सोमवार	सूर्यषष्ठी, लोलार्क-षष्ठी व्रत।
४	मंगलवार	श्रीराधाष्टमी।
८	शनिवार	पद्मा एकादशी व्रत, सबके लिए।
९	रविवार	महारविवार (बड़का एतवार)। प्रदोष, वामनद्वादशी।
११	मंगलवार	अनन्तचतुर्दशी व्रत।
१२	बुधवार	स्नान-दानकी पूर्णिमा, महालयारम्भ।
१५	शनिवार	संकष्टी गणेशचतुर्थी-व्रत।
१९	बुधवार	महालक्ष्मी-व्रत, जीवत्पुत्रिका व्रत।
२०	गुरुवार	मातृनवमी-श्राद्ध।

श्रीकृष्ण-जन्मस्थान :

प्रत्यक्ष-दर्शियोंके भावभीने शब्द-सुमन

★

जगद्गुरु श्री माध्वाचार्य मूलस्थान उडुपि आद्य-मठान्तर्गत-श्री पालिमार मठाधीशः श्रीविद्यामान्यतीर्थश्रीपादाः—वयं श्रीकृष्णजन्मभूमिसंदर्शनेन महानन्दं संप्राप्ताः। अस्या भूमेर्जीर्णोद्धारकर्तारो धन्याः। अत्र प्रत्यक्षरूपेण श्रीकृष्णो भगवान् सन्निहितः। सर्वे भक्ता अस्या भूमेः संदर्शनमात्रेण धन्याः।

श्री विद्यामान्यतीर्थ
माध्वाचार्यः पालीमार मट,
उडुपि, दक्षिण कर्नाटक

धनका सदुपयोग जो भी कर सकता है, वह बड़ा भाग्यशाली मानव है। भगवान्की सेवा ही सच्ची सेवा है तथा मानव-स्वभावमें मानव-सेवाका मिश्रण हो, तो फिर पूर्णरूप ब्रह्मका रूप बन जाता है। यहाँकी रचना बड़ी आनन्ददायिनी है। बड़ा सन्तोष हुआ।

ताराचन्द डालमिया
२३१ दादाभाई नौरोजी रोड,
बम्बई—१

अतिसुन्दर तथा अवर्णनीय आनन्दपूर्ण भगवान्के इस स्थानका क्या वर्णन किया जा सकता है?

श्री विक्रमसिंह
जिला-जज, मथुरा

आज मथुरामें चलकर श्रीकृष्ण भगवान्के मन्दिरमें सुन्दर मूर्तिका दर्शन करके बहुत प्रसन्नता हुई। हमारी भक्ति भगवान्तक पहुँचे, यही प्रार्थना है।

G. J. SAGAR
Sagar Jewellers
P. O. Box 365, Kuwait
Arabian Gulf

I an very happy to have visited the place where God Krishna was born wish my best thanks for people we have been received and given some explanations.

ALAIN DE PAVIR
B. 1180, Bruvelles
Belgium

I am very happy to have seen this holy place of Hindu religion and I hope to come back here one day.

Dr. HANS BERND SCHAFER
Bochum, W. Germany

It is very interesting to visit India and all its ancient buildings and temples. India is a completely different from our civility. Also if in the old times there are common points.

Mr. & Mrs. BARTOLOMUCHHI
Italy

I had the great good luck to see the birth place of Lord Sri Krishna with my family. I am grateful to the Lord for having given me this opportunity to see this place.

J. B. PATNAIK
Deputy Defence Minister,
Govt. of India, New Delhi

We, from Amritsar, have the previlege and occasion of visiting the sacred Birth place of Lord Krishna. We have visited the present premise which is coming up rapidly for the coming generation to see, realize and appreciate what their elders have achieved. We pray that the people concerned may continue to complete this gigantic work for the cause of our Hinduism. We had also the previlage of staying in the International Guest House. We were served with very pure food which we realized and appreciated. May the management contineu to serve this good cause. we are also taking all the monthly Volumes of Sri Krishna Sandesh which will enlarge our knowledge.

R. K. MANCHANDA
6–Imperial Hotel,
Amritsar

VED RATTAN SHARMA
Prop. Punjab Tyre Retrading
Works, Outside Gandhi Gate,
Amritsar

Dr. K. D. Sharma
Hall Bazar, Amritsar

वर्ष : ९] मथुरा : अगस्त, १९७३ [अङ्क : १

कर्मयोगकी श्रेष्ठता

यदि कहो कि 'आप तो कभी कर्मसंन्यासकी महिमा गाते हैं तो कभी कर्मयोगकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं, अतः मैं जानना चाहता हूँ कि इन दोनोंमें श्रेष्ठ कौन है ?' तो इस प्रश्नका उत्तर सुनो : कर्मसंन्यास और कर्मयोग दोनों ही कल्याणकारी साधन हैं, परन्तु उन दोनोंमें भी कर्मसंन्यासकी अपेक्षा कर्मयोग श्रेष्ठ है; क्योंकि उसका अनुष्ठान सुगम है, सहज है। मेरी दृष्टिमें कर्मोंको स्वरूपतः छोड़ बैठना संन्यास नहीं है। क्योंकि जो अपनेको कर्मसंन्यासी कहते या मानते हैं; उन्हें भी कुछ-न-कुछ कर्म करना ही पड़ता है। हम कह आये हैं कि कोई भी कभी एक क्षणके लिए भी कर्म किये बिना नहीं रह सकता। अतः वास्तवमें संन्यासी कौन है, इसे भलीभाँति समझनेकी आवश्यकता है। जो पुरुष किसीसे द्वेष नहीं करता और न किसीसे कुछ चाहता ही है, उसे सदा संन्यासी ही समझना चाहिए। क्योंकि जो राग-द्वेषादि द्वन्द्वोंसे रहित है; वह सुखपूर्वक भव-बन्धनके मुक्त हो जाता है। अतः संन्यासी कर्म छोड़ दे या कर्म करे : इस बातको लेकर उसमें कोई विशेषता नहीं होती है। उसकी विशिष्टता या महत्ता इसी बातमें है कि वह राग-द्वेषसे शून्य हो। यह गुण वेषधारी संन्यासीमें न हो, तो वह कदापि संन्यासी कहलाने के योग्य नहीं है। यही गुण कर्मयोगीमें हो तो वह वेष धारण किये बिना भी संन्यासी ही है।

यदि यही बात है तो सांख्य (ज्ञानयोग) और कर्मयोगमें अन्तर ही क्या रहा ? जो बाल-बुद्धिके लोग हैं, जो तत्त्वको नहीं समझते, वे ही सांख्ययोग और कर्मयोगको एक दूसरेसे पृथक् या भिन्न कहते हैं; उनके फलमें भेद मानते हैं। जिन्हें सद्सद्वस्तुका विवेक है, वे विज्ञ पण्डित जन उक्त दोनों साधनोंको फलकी दृष्टिसे एक ही समझते हैं; वे उनके फलमें कोई पार्थक्य या भेद नहीं स्वीकार करते। जो इन दोनोंमें से एकका भी आश्रय लेते हैं, वे दोनों साधनोंके चरम फलको प्राप्त कर लेते हैं। फलको एकतासे ही उन साधनोंकी एकता सिद्ध हो जाती है। ज्ञानयोगी जिस स्थान, परमधामको पाते हैं, वही कर्मयोगियोंका भी प्राप्य है। अतः जो फलकी दृष्टिसे सांख्य और योगको एक देखता या समझता है, वही यथार्थदर्शी है।

संन्यासका अर्थ है भलीभाँति त्याग। मन, इन्द्रिय और शरीर द्वारा किये जानेवाले सम्पूर्ण कर्मोंमें जो कर्तापनका त्याग है, वही संन्यास है। ऐसे संन्यासकी प्राप्ति कर्मयोगके विना अत्यन्त कठिन है, दुःखसाध्य है। कर्म करते हुए ही यह भावना होती है कि 'सारे कर्म प्राकृत गुणों द्वारा सम्पादित हो रहे हैं; मैं (आत्मा) इन कर्मोंका कर्ता नहीं हूं।' अतः कर्तापनका त्याग कर्मयोगके अनुष्ठानसे ही सुकर है। जो मननशील भगवच्चिन्तन-परायण कर्मयोगी है, वह परब्रह्म परमात्माको शीघ्र प्राप्त कर लेता है; क्योंकि वह कर्म और कर्तृत्व सब कुछ भगवान्‌के चरणोंमें चढ़ा देता है। उसकी दृष्टिमें सब कुछ भगवत्संकल्पसे ही होता है; अन्यथा एक पत्ता भी हिल नहीं सकता। अतः उसमें कर्तापनके त्यागका भाव सहजसिद्ध है। जिसका मन अपने वशमें है, जो जितेन्द्रिय है, जिसका अन्तःकरण विशुद्ध है तथा जो सम्पूर्ण प्राणियोंके आत्मरूप परमात्माको ही अपना आत्मा जानता है, ऐसा कर्मयोगी कर्म करता हुआ भी उससे लिप्त नहीं होता।

नूतन-वर्षपर

इस अंकके साथ 'श्रीकृष्ण-सन्देश'का नवां वर्ष आरम्भ हो रहा है। इस अवसरपर हम अपने प्राचीन कृपालु लेखकों, ग्राहकों, पाठकों तथा सहयोगियोंके प्रति हार्दिक कृतज्ञता-ज्ञापन करते हुए प्रस्तुत नववर्षमें भी उन सबके तथा नये-नये साथियोंके सहयोगका सादर आह्वान करते हैं। गत वर्ष हमारा देश अनेकानेक प्रतिकूल परिस्थितियों तथा दुश्चिन्ताओंसे उद्विग्न रहा है। भगवान् श्रीकृष्णकी उदार अनुकम्पासे वह वर्ष सकुशल बीता और 'श्रीकृष्ण-सन्देश' अपने उद्देश्यके अनुसार जनता-जनार्दनकी सेवामें उत्तरोत्तर गतिशील रहा है। वर्तमान भीषण महर्घतामें भी प्रत्येक ग्राहक और पाठक महानुभाव पत्रके पाँच-पाँच नये ग्राहक बनानेका तीव्र प्रयत्न करें, तो हम इस संकटमें भी दृढताके साथ उनकी पूर्णवत् सेवार्थ सक्षम हो सकेंगे।

—सम्पादक

कुवलयापीडका पीडन ★ 'राम'

देखा बलवीरने विशाल रंगशाला-द्वार
प्रेरित महावतसे गज अभिमानीको,
साध परिकर बाँध काले घुँघराले बाल
बोले घन-रव-सी गम्भीर धीर बानीको।
ए रे पीलवान, कही मान हट हठ छोड़
मार्ग दे बचा ले निज प्राण और पानीको,
मानेगा नहीं जो गजराजके सहित तुझे
भेज दूँगा आज यमराज-राजधानीको ॥ १ ॥
डाँट महावत खा कुपित हो अधर काट
हाँका करिको था काल अन्तक-से यम-से
दौड़ गजराजने सवेग पकड़ा था उन्हें
छूट चरणोंमें वे छिपे थे मार धमसे।
कुपित करीन्द्रने न देख सूँड़से हो सूँघ
पा लिया, परन्तु हुए मुक्त पराक्रमसे,
धमसे पकड़ पूँछ पीछे ले गये थे खींच
ईश बली गजको पचीस धनु-क्रमसे ॥ २ ॥
सर्पको गरुड़ जैसे खींचे खेल-खेलमें ही
वैसे ही गजेन्द्रको घसीटा गिरिधारीने,
बार-बार दायें-बायें घूमते वितुंड संग
घूम-घूम चक्कर लगाया बनवारीने।
फिर सामने आ पाणितलसे प्रहार कर
भाग आगे गजको खिझाया अघहारीने,
दौड़ खेलते-से गिरे, किन्तु उठे शीघ्र, दिया—
भूपर ही दाँतोंसे दबाव शुण्डधारीने ॥ ३ ॥
विक्रमकी व्यर्थताके बोधसे अतीव क्रोध
जागा गजका था, पीलवानोंने बढ़ाया था,
पीछा किया कृष्णका सरोष मत्त मातंगने
अग्नि शिखापर ज्यों पतंग चढ़ आया था।
आते देख ऊपर पकड़ मधुसूदनने
सूँड ऐंठ वारणको भूपर गिराया था
सिंह-से दहाड़के उखाड़े दन्त-से हो मार
प्रेतपुरी हाथी हाथीवानको पठाया था ॥ ४ ॥●

पुरुषार्थ

★

संसारमें दो विचारधाराओंके लोग देखे जाते हैं : एक दैववादी और दूसरे पौरुषवादी। विवेकसे यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि दैववाद लोगोंको भ्रममें डालनेवादी है। वह आलसियोंका सहारा है : **दैव दैव आलसी पुकारा।** पूर्वजन्मका किया हुआ कर्म ही इस जन्ममें 'दैव' कहलाता है :

पूर्वजन्मकृतं कर्म तद् दैवमिति कथ्यते।

जब पूर्वकृत पुरुषार्थका ही नाम दैव है, तो उसकी प्रधानता कहाँ रही ? वह तो पुरुषार्थका आत्मज है। वेद या उपनिषद्की वाणी पुकार-पुकार कर कहती है कि कर्म करते हुए ही यहाँ सौ वर्षोंतक जीवित रहनेकी इच्छा करो : **कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः। चरैवेति चरैवेति** यह श्रुतिवचन भी सदा चलने और आगे बढ़नेकी ही प्रेरणा देता है। नीति कहती है कि 'दैवको मारकर अपनी शक्तिके अनुसार पुरुषार्थ करो : **दैवं निहत्य कुरु पौरुषमात्मशक्त्या।** पुरुषार्थ ही जीवन है। पौरुषहीन मनुष्य मृतकके तुल्य है। वह साँस लेता हुआ भी जीवित नहीं है : **श्वसन्नपि न जीवति।**

भगवान् श्रीकृष्णने गीतामें पौरुषपर ही बल दिया है। अर्जुन रणसे विमुख हो कर्तव्य कर्मको छोड़कर भीखसे जीविका चलानेके लिए उद्यत हो गया था। भगवान्ने उसके उस भावको 'कश्मल' या मोह बताया। उसे 'क्लैब्य'की संज्ञा दी। उसको 'अनार्यजुष्ट' और 'अकीर्तिकारक' कहा तथा उसे क्षुद्र हृदयदौर्बल्य त्यागकर पुरुषार्थ करनेके लिए उठ खड़े होनेकी आज्ञा देते हुए कहा : "स्वधर्म युद्ध ही क्यों न हो, उसके पालनसे श्रेष्ठ कुछ भी नहीं है। वह स्वर्गका उन्मुक्त-द्वार है। वे लोग बड़े सुखी हैं, जिन्हें ऐसे धर्मयुद्धका अवसर मिलता है। जो इस तरह प्राप्त धर्मसम्मत संग्रामसे मुँह मोड़ लेता है, वह अपने धर्म और कीर्ति दोनोंसे हाथ धोकर पापका भागी होता है। पुरुषार्थसे ही जीवन सार्थक होता है; अकीर्ति तो मरणसे भी बढ़कर दुःखदायिनी है। कर्तव्यसे भागनेवालेको 'कायर'की उपाधि दी जाती है। उसके शत्रु उसे गालियाँ देते हैं, उसकी निन्दा करते हैं; इससे बढ़कर दुःखकी बात और क्या होगी ? अतः स्वधर्म-पालनके लिए सतत उद्योगशील रहना चाहिए।"

भगवान्के इस उद्बोधनमें पद-पदपर पुरुषार्थके लिए प्रेरणा भरी है। यह सृष्टि भी पुरुषार्थका ही फल है। पालन और संहार भी पुरुषार्थसे ही सम्भव होते हैं। इस कर्तव्यका निर्वाह करनेके लिए एक ही परमात्मा ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र—ये तीन रूप धारण करते

हैं। भगवान्‌का अवतार भी पुरुषार्थवादकी स्थापनाके लिए ही होता हैं। साधुपरित्राण, दुष्कर्मियोंका विनाश और धर्मकी स्थापना—ये अवतारके तीनों उद्देश्य पुरुपार्थसे ही पूर्ण होते हैं; दैव-दैव पुकारनेसे नहीं। पुरुषार्थसे ही दैव बनता है, दैवसे पुरुषार्थ नहीं। भगवान्‌ने जीवमात्रका कर्ममें ही अधिकार बताया है, फलमें नहीं, कर्म करके ही मानव-जीव कृतार्थ होता है, फलकी उसे चिन्ता नहीं करनी चाहिए। अकर्म या निकम्मापन तो आलस्यका मूर्तिमान् रूप है। प्रायः लोग आलस्यमें सुख मानते और उसमें आसक्त रहते हैं। किन्तु भगवान्‌ने स्पष्ट कहा है : **मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि।** तुम्हारी कर्म न करने या निकम्मा बैठे रहनेमें आसक्ति न हो।

महात्मा तिलकने गीताको 'कर्मयोगशास्त्र' कहा है। गीतामें भगवान्‌ने कर्म या पुरुषार्थके लिए ही प्रेरित किया है : **कुरु कर्मैव तस्मात्त्वम्।** कर्मसंन्यासकी अपेक्षा कर्मयोगको विशेष स्थान दिया गया है : **तयोस्तु कर्मसंन्यासात् कर्मयोगो विशिष्यते।**

भागवतमें राजा परीक्षित्‌ने भगवान्‌के वीर्य (पराक्रम) सुननेकी ही इच्छा प्रकट की है : **विष्णोर्वीर्याणि शंस नः। कृतवान् यानि विश्वात्मा तानि नो वद** गोवर्धन-पूजनके प्रसंगमें नन्द आदिके समक्ष कर्म या पौरुषकी महिमा प्रकट करते हुए श्रीकृष्णने कहा था : कर्मसे ही जीव जन्म लेता है और कर्मसे ही मृत्युको प्राप्त होता है। सुख-दुःख आदिकी प्राप्ति भी कर्मसे ही होती है। यदि कर्मोंका फल देनेवाला कोई ईश्वर है तो वह भी कर्म-कर्ताका ही आश्रय लेता है। जो कुछ करता नहीं, उसका वह भी साथ नहीं देता।[1] जब शाल्व भगवान् श्रीकृष्णसे बहकी-बहकी बातें करने लगा, उस समय उन्होंने उसका उपहास उड़ाते हुए कहा : 'मूर्ख ! तू व्यर्थ ही डींग हाँक रहा है, तेरे पास यमराज खड़ा है, पर तेरी दृष्टि उधर नहीं जा रही है। शूर-वीर बहुत बातें नहीं बनाते, वे युद्धमें अपने पौरुषका ही प्रदर्शन करते हैं।[2]

श्रीकृष्णका सारा जीवन ही पुरुषार्थमय रहा। मथुरामें, द्वारकामें सर्वत्र उन्हें विपक्षियोंसे लोहा लेना पड़ा और विजयलक्ष्मीने उनका वरण किया। महाभारत-युद्धमें शस्त्र-हीन रहनेकी प्रतिज्ञा करके उन्होंने कभी शस्त्र नहीं उठाया, तथापि अर्जुन और पाण्डवोंकी विजयका सारा श्रेय श्रीकृष्णको ही दिया जा सकता है। महासमरमें अस्त्रशस्त्रोंकी वर्षामें भी निःशङ्क और सोत्साह रहकर जिस शौर्यके साथ उन्होंने रथ-सञ्चालन किया, उसकी कहीं तुलना नहीं है।

---

१. कर्मणा जायते जन्तुः कर्मणैव विलीयते।
सुखं दुःखं भयं क्षेमं कर्मणैवाभिपद्यते॥
अस्ति चेदीश्वरः कश्चित् फलरूप्यन्यकर्मणाम्।
कर्तारं भजते सोऽपि नह्यकर्तुः प्रभुर्हि सः॥

२. वृथा त्वं कत्थसे मन्द न पश्यस्यन्तिकेऽन्तकम्।
पौरुषं दर्शयन्ति स्म शूरा न बहुभाषिणः॥ (श्रीमद्भागवत १०.७७.१९)

वास्तवमें जो शूर-वीर हैं, वे पौरुषके ही पुजारी होते हैं। उनकी दृष्टिमें दैव कृपण और अशक्त है। जो भीरु और कायर है, वही दैववादका अनुसरण करता है। जो पुरुपार्थसे दैवका दमन करनेमें समर्थ है, उसका कार्य या अभीष्ट अर्थ कभी दैवसे विपन्न नहीं होता। वीर लक्ष्मणने तो श्रीरामको भी फटकार सुनायी और कहा : "क्षमा कीजियेगा, मैं आपके राज्याभिषेकमें विघ्न डालना कदापि सहन नहीं कर सकता। यह सब धर्मके नामपर किया जा रहा है और आप भी इसमें धर्म ही मान रहे हैं। परन्तु जिस धर्मने आपके मनमें भी दुविधा उत्पन्न कर दी है, मैं उस धर्मको ही नहीं मानता। ऐसा धर्म मेरेलिए द्वेपका पात्र है। मैं यह अन्याय नहीं होने दूंगा। आज दुनिया देख लेगी कि दैव और पुरुपार्थमें कौन बड़ा है, कौन बलवान् है? आज दैव और पुरुषार्थमें फैसला हो जायगा। जिन लोगोंने दैवको बाधा देखी है, वे अब देखेंगे कि पुरुपार्थने दैवको मार गिराया। मदोन्मत्त गजराजकी भाँति वेगसे दौड़कर आते हुए दैवको आज मैं पुरुपार्थसे पीछे खदेड़ दूंगा। तीनों लोक और समस्त लोकपाल मिलकर भी रामका राज्याभिपेक नहीं रोक सकते, फिर दूसरोंकी तो बात ही क्या है? जो लोग आपको वनमें भेजना चाहते हैं, वे स्वयं चौदह वर्षोंतक वनमें रहेंगे। मैं उनकी आशाके महल को जलाकर खाक कर दूंगा। आप अपना राज्याभिषेक होने दें, मैं समस्त विरोधियोंको रोक रखूंगा। मेरी ये दो बलिष्ठ भुजाएँ केवल शोभाके लिए नहीं हैं, धनुष आभूषणका काम नहीं देगा। यह तलवार केवल कमरमें बाँध रखनेके लिए नहीं हैं। मेरे इन बाणोंके खम्भे नहीं बनेंगे। ये चारों वस्तुएँ शत्रुओंका दर्प-दलन करनेके लिए ही हैं। बताइये, आज किसके प्राण ले लूं? जिस तरह यह सारी पृथ्वी आपके अधीन रह सके, वैसा आदेश मुझे दीजिये। मैं आपका किङ्कर हूँ।"

लक्ष्मणके ये ओजस्वी वचन उनके उत्साह और शौर्यके अनुरूप ही थे। इसीलिए लङ्काके रणक्षेत्रमें उन्होंने मेघनाद-जैसे सुरेन्द्रविजयी वीरको धराशायी कर दिया। हनुमान्‌जी अपने पुरुपार्थके ही कारण 'महावीर' कहलाते और घर-घर पूजित होते हैं। शक्ति और पुरुपार्थके ही कारण देव-सेनापति स्कन्द लोकवन्द्य हुए है। पुरुपार्थसे ही शङ्कर कालविजयी एवं मृत्युञ्जय हैं। चक्रपाणि भगवान् विष्णु प्रबल पुरुपार्थसे ही दैत्योंका दमनकर त्रिलोकीके संरक्षण एवं पालनमें समर्थ हैं। हमारे देव, देवेन्द्र, अवतारी पुरुष तथा अन्य बड़े-बड़े भारतीय वीर अपने वचन और कर्मसे भी हमें पुरुषार्थ-परायण होनेका सन्देश देते हैं। निकम्मे या कायरको कभी सफलता नहीं मिलती। सोते हुए सिंहके मुखमें मृग स्वयं आकर प्रवेश नहीं करते। वह पुरुपार्थसे ही 'मृगराज' या वनराज बना बैठा है। भारतवर्षको आज पुरुपार्थ और पुरुपार्थी शूर वीरोंकी आवश्यकता है। हम अपने पूर्वपुरुषोंसे सदा प्रबल पुरुपार्थकी प्रेरणा लें और देश एवं समाजको संकटसे बचायें——यही हमारा ध्येय होना चाहिए। हम पुरुपार्थवादी श्रीकृष्णको सदा दृष्टिमें रखें।

●

नारायण श्रीकृष्णका पुरुषार्थवादी प्रेरक व्यक्तित्व

डॉ० जयकिशन प्रसाद खण्डेलवाल

श्रीकृष्णका अनन्त पुरुषार्थ हमारे लिए महान् प्रेरणा प्रदान करता है। अत्यन्त विपरीत परिस्थितियोंमें वे निरन्तर पुरुषार्थ करते रहे। जब उनका कंसके कारागारमें जन्म हुआ, तो कोई गीत गानेवाला नहीं था और जब उन्होंने जराके बाण लगनेसे प्राण त्यागे, तो कोई रोनेवाला नहीं था। जन्म और मृत्यु, अवतरण और तिरोधानके बीच उनके संघर्षमय जीवनकी कल्पना उनके पुरुषार्थी रूपको स्पष्ट कर देती है। जीवनभर कभी भी उन्होंने विश्राम नहीं लिया, निरन्तर पुरुषार्थ करते रहे। कभी इन्द्रके भयसे गोवर्धन-वासियोंकी रक्षामें तत्पर हुए, कभी कालियनागके भयको दूर किया। कौरव और पाण्डवोंमें मैत्री जुड़ानेका प्रयास करते रहे, और उसमें सफल न हुए तो महाभारतमें अर्जुनके सारथि बने। जब अर्जुन उनके सारथि बननेपर भी हिम्मत हार बैठा, तो गीताका उपदेश देकर उसे कर्मपथ-पर आरूढ़ किया। महाभारतके उपरान्त विरक्त युधिष्ठिरको उपदेश दिया। शिशुपालका वध, कालयवनसे युद्ध, द्वारकापुरीका निर्माण और अन्तमें यादववंशका परस्पर लड़कर विनाशको प्राप्त करना आदि घटनाएँ श्रीकृष्णके संघर्षमय जीवनकी ही द्योतक हैं। इन समस्त विपरीत परिस्थितियोंमें भी उन्होंने कभी पुरुषार्थ नहीं छोड़ा।

नारायण श्रीकृष्णने गीताके द्वारा अर्जुनको पुरुषार्थके साथ ही भगवत्-स्मरणका उपदेश दिया—"अर्जुन सर्वदा मेरा स्मरण करो और युद्ध—पुरुषार्थ करते रहो; इस प्रकार मन, बुद्धि मुझको अर्पित कर मुझे प्राप्त कर लोगे।" पुरुषार्थवादी कृष्णका यह सन्देश महान् है। यह पुरुषार्थ करनेकी प्रबल प्रेरणा प्रदान करता हैं, साथ ही यह गारंटी भी कि पुरुषार्थवादी मोक्ष देता है और प्राप्त भी करता है। कहावत प्रसिद्ध है : 'उद्योगी पुरुष ही लक्ष्मीको प्राप्त करता है।' इसी प्रकार पुरुषार्थवादी पुरुष ही मोक्ष प्राप्त करता है।

पुरुषार्थकी सफलता-विफलतापर विचार करनेसें पुरुषार्थ-साधनमें कमी आती हैं, अतः श्रीकृष्णने निष्काम पुरुषार्थकी प्रेरणा दी है। प्रकृति स्वयं पुरुषार्थ करती है और उससे इस सृष्टिका सृजन होता है : प्रकृति स्वभावसे ही पुरुषार्थ करती है। सांख्यदर्शनके अनुसार पुरुषार्थोंमें श्रेष्ठतम पुरुषार्थ मोक्ष है। पुरुषार्थ-चतुष्टयकी कल्पना भी अन्यत्र महत्त्वपूर्ण है। श्रीकृष्णने अपने जीवनमें पुरुषार्थ-चतुष्टयका साधन किया। पुरुषार्थ हमें ऊपर उठानेवाला है। गीता पुरुषार्थका ही उपदेश है। सबसे बड़ा पुरुषार्थ आत्माकी साधना है। श्रीकृष्ण योगेश्वर थे। उनका जीवन अनेक संघर्षोंसे परिपूर्ण था। किन्तु उनका चित्त अप्रभावित था। इसीलिए गीताके अन्तिम श्लोकमें कहा है :

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम॥

श्रीकृष्णके पुरुषार्थका आधार : 'गोपालत्व'

श्रीशान्तिस्वरूप गुप्त

★

[विज्ञ लेखककी मान्यता है कि भगवान् श्रीकृष्णमें जो लोकोत्तर पुरुषार्थ पाया जाता है, उसका एकमात्र आधार उनका 'गोपालत्व' है। अर्थात् उन्होंने गायोंकी जो अनन्य दुर्लभ सेवा की, उसीका यह शुभ फल है। अपने इस मन्तव्यके समर्थनमें प्रथम उनके अवतारकार्योंकी अनन्यसुलभ पौरुषेयता सिद्ध कर अथर्ववेदके तीन काण्डोंके कतिपय सूक्तों द्वारा गायके विराट्रूपका चित्र प्रस्तुत किया है। इसे पढ़नेपर स्पष्ट हो जाता है कि ऐसी माताकी सेवाने ही उन्हें यह दिव्य पौरुष प्रदान किया।--सं०]

१. गोपालकृष्णके अवतारकार्य

भगवान् कृष्णने अपने अवतरित होनेके तीन हेतु बताये हैं : १. परित्राणाय साधूनाम्, २. विनाशाय च दुष्कृताम् और ३. धर्मसंस्थापनार्थाय। अपनी इन्हीं तीनों प्रतिज्ञाओंकी पूर्तिके लिए उन्होंने जीवनभर संघर्ष किया और इनके पूर्ण होनेपर ही यहाँसे प्रयाण किया।

महाभारत-कालमें भारतवर्ष अनेक छोटे-छोटे राज्योंमें विभक्त था : मद्र, केकय, गांधार, पाञ्चाल, काशी, कोशल, मत्स्य, मगध, कलिंग, अंग, वंग, चेदि, मणिपुर, सिन्धु-माहिष्मती, अवन्ती, प्राग्ज्योतिषपुर त्रिगर्त, गुर्जर, मणिपुर आदि। यहाँके छोटे छोटे राजा भी इतने बलवान् थे कि वे अपनेको चक्रवर्ती सम्राट्से कम नहीं मानते और अवसर पाते ही अपने निकटवर्ती राज्यपर चढ़ाई करके उनका राज्य हस्तगत कर लेते थे। इसलिए उनका मदोन्मत्त होना स्वाभाविक ही था। स्वभावतः प्रजा उनके अत्याचारोंका शिकार बनती रहती। इस प्रकार धर्मकी सारी व्यवस्था छिन्न-भिन्न रहती थी।

ऐसे ही समयमें भगवान् श्रीकृष्ण अवतरित हुए। उन्होंने समझ लिया कि अपने मंतव्य-की पूर्तिके लिए सबसे प्रथम इस विभक्त भारतवर्षको एक समर्थ महान् भारत बनानेसे ही अपने उद्देश्यकी पूर्त्ति संभव हो सकेगी। अतः इसी उद्देश्यकी पूर्तिके लिए उन्होंने जीवनभर संघर्ष किया और अन्तमें वे उसमें पूर्णतया सफल भी हो गये।

"विनाशाय च दुष्कृताम्" की पूर्तिके लिए उन्होंने परमपुरुषार्थी और भक्त अर्जुनको उसका निमित्त बनाया। वह ऋजु था, निष्कपट और कोमल था। अतः भगवान्की वाणी
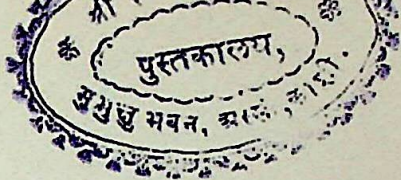
उसके हृदयतलमें प्रविष्ट हो गयी और वह **करिष्ये वचनं तव** कहकर उनकी सिद्धिके निमित्त कटिवद्ध हो गया और श्रीकृष्ण स्वयं तटस्थ रहकर अर्जुन द्वारा ही समस्त दुष्टोंका नाश करवानेमें समर्थ हुए।

उस समयके राजाओंमें सबसे प्रबल धृतराष्ट्रके पुत्र कौरव थे, जिनका नेता दुर्योधन था। वे सभी मदोन्मत्त एवं निरंकुश थे। अतः सर्वप्रथम उन्हींका विनाश करवाना भगवान्ने श्रेयस्कर समझा।

दुष्टोंका विनाश किये विना साधुओंका कल्याण किस प्रकार संभव हो सकता है? अतः सर्वप्रथम ऐसे दुष्टोंका विनाश ही भगवान्ने वांछनीय समझा और करा दिया। केवल दुष्ट-मात्र ही नहीं; अपितु जो लोग स्वयं धार्मिक प्रवृत्तिके होकर भी उन दुष्टोंके अत्याचारोंमें सहायक थे, उन भीष्म-द्रोणादिका भी वध कराना उन्होंने श्रेयस्कर समझा। इस प्रकार जब धरासे दुष्ट-पुरुष उठ गये, तो प्रतिज्ञाके दूसरे भागकी पूर्ति करनेका समय आया। छोटे-छोटे भागोंमें विभक्त भारतको महान् भारत बनाकर उन्होंने हस्तिनापुर राजधानीके एकसूत्रमें आवद्ध कर दिया।

अपने इसी पुरुषार्थकी सिद्धिके लिए उन्होंने स्वयं राज्यके सुखों, प्रलोभनोंका परित्याग किया। शिशुपाल-जैसे व्यक्तियोंकी गालियाँ सहीं, अपमान सहा। स्वयं राजा होकर अर्जुनका सारथ्य स्वीकार किया, जीवनको सङ्कटमें डाला। अपनी तीन अक्षौहिणी सेनोका परित्याग किया। शस्त्र न उठानेकी अपनी प्रतिज्ञा तोड़ी। दुर्योधनका विनाश कराकर स्वयं अपने भाई बलरामके कोप-भाजन बने। अन्तमें जब देखा कि स्वयं उनके परिवारके लोग भी धर्मकी मर्यादाके विरुद्ध चलने लगे हैं, तो स्वयं उनका भी अपने ही हाथों विनाश कर अपनी तृतीय प्रतिज्ञा 'धर्मसंस्थापनार्थाय' के लिए संघर्ष किया। अन्ततः दुष्टोंका विनाश, साधुओंकी रक्षा एवं धर्मकी संस्थापना हो गयी। इस प्रकार जब उनका **पुरुषार्थ** फलीभूत हो गया, तो इहलोकसे महाप्रयाण कर वे जहाँसे आये थे, वहीं वापस लौट गये।

भगवान् श्रीकृष्णका गोपाल-स्वरूप भी उनके पुरुषार्थका ही द्योतक है, क्योंकि गौको वेदोंमें भगवान्का विराट्रूप ही बताया गया है और जीवनसर्वस्व लगाकर उनकी रक्षा श्रीकृष्ण-चरित्रका बहुत बड़ा पहलू है। यहाँ गायके उस विराट् रूपकी भगवान् वेदके शब्दोंमें झाँकी लीजिये :

२. गौके रूपमें भगवान्का विराट् रूप

वेदने गौको 'अघ्न्या'की संज्ञा दी है : जिसका अर्थ है, किसी भी अवस्थामें जिसका वध नहीं किया जा सकता। अतः जो तथाकथित विद्वान् वेदोंमें गोमेधका अस्तित्व सिद्ध करते हैं, वे कितने अज्ञ हैं, यह प्रत्यक्ष है। क्या वेद कभी अपने सिद्धान्तके विरुद्ध उपदेश कर सकता है? गौको वेदने कितने उच्च आसनपर आसीन किया है, यह इस बातसे सिद्ध हो जाता है कि गौके शरीरके आधारपर उन्होंने परमात्माके विराट् रूपका वर्णन किया है। अथर्ववेदके ९ वें काण्डके ७ वें सूक्तमें कहा है :

प्रजापतिश्च परमेष्ठी च शृङ्गे इन्द्रः शिरो अग्निर्ललाटं यमः कृकाटम् ॥ १ ॥

उस विराट् गोरूपी परमात्माके प्रजापति और परमेष्ठी शृंगस्थानीय, इन्द्र शिर, अग्नि ललाट एवं गलेकी घंटी यम है।

सोमो राजा मस्तिष्को द्यौरुत्तरहनुः पृथिव्यऽधरहनुः ॥ २ ॥

उस विराट्पुरुषका सोम राजा मस्तिष्क, द्युलोक एवं पृथ्वी उसके ऊपर और नीचेके जवड़े हैं।

विद्युज्जिह्वा मरुतो दन्ता रेवतीर्ग्रीवाः कृत्तिकाः स्कन्धाः घर्मो वहः ॥ ३ ॥

बिजली उसकी जिह्वा, मरुद्गण, उसके दन्त, रेवतीनक्षत्र उसकी ग्रीवा, कृत्तिकाएँ स्कन्ध एवं सूर्य उसका ककुद् (डिल्ल) है।

विश्वं वायुः स्वर्गो लोकः कृष्णद्रं विधरणी निवेष्यः ॥ ४ ॥

विश्व वायु, स्वर्ग लोक, मेघ कण्ठ, लोकोंको पृथक्-पृथक् धारण करनेवाली शक्ति उस विराट् पुरुषके कूल्हे हैं।

श्येनः क्रोडोऽन्तरिक्षं पाजस्यं बृहस्पतिः ककुद् बृहतीः कीकसाः ॥ ५ ॥

श्येनयाग क्रोड, अन्तरिक्ष पेट, बृहस्पति कोहन, विस्तृत दिशाएँ उसके गलेके मोहरे हैं।

देवानां पत्नीः पृष्टयः उपसदः पर्शवः ॥ ६ ॥

देवोंकी स्त्रियाँ पीठके मोहरे एवं इष्टियाँ इस विराट्पुरुषकी पसलियाँ हैं।

मित्रश्च वरुणश्चांसौ त्वष्टा चार्यमा च दोषणी महादेवो बाहूः ॥ ७ ॥

मित्र एवं वरुण बाहुओंके उपरि भाग, त्वष्टा और अर्यमा बाहुओंके भाग, महादेव अगली राँगोंके निचले भाग हैं।

इन्द्राणी भसद् वायुः पुच्छं पवमानो बालाः ॥ ८ ॥

इन्द्राणी भसद्, वायु पूँछ और पवमान बाल है।

ब्रह्म च क्षत्रं च श्रोणी बलमूरू ॥ ९ ॥

ब्राह्मण और क्षत्रिय दोनों नितम्ब एवं बल ऊरुद्वय (जांघें) हैं।

धाता च सविता चाष्ठीवन्तौ जङ्घा गन्धर्वा अप्सरसः कुष्ठिका अदितिः शफाः ॥१०॥

धाता और सविता अष्ठीवान् पिण्डलियां गन्धर्वअप्सराएँ, कुष्ठिका—खुरके ऊपरि भागकी उँगलियाँ एवं पृथ्वी खुर हैं।

चेतो हृदयं यकृन्मेधा व्रतं पुरीतत् ॥ ११ ॥

उस विराट्पुरुषका चेतना हृदय, मेधा, बुद्धि यकृत् एवं व्रत उसकी अँतड़ियाँ हैं।

क्षुत् कुक्षिरिरा वनिष्ठुः पर्वताः प्लाशयः ॥ १२ ॥
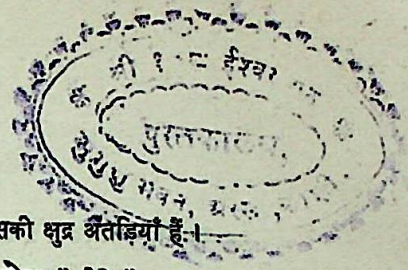
भूख कुक्षि, अन्न-जल वृहदन्त्र एवं पर्वतश्रृंखलाएँ उसकी क्षुद्र अँतड़ियाँ हैं।

क्रोधो वृक्कौ मन्युराण्डौ प्रजा शेपः ॥ १३ ॥

क्रोध वृक्क, मन्यु अण्डकोष एवं प्रजाएं प्रजननस्थान है।

नदी सूत्री वर्षस्य पतय स्तना स्तनयित्नुरूधः ॥ १४ ॥

नदी उस विराट्पुरुषकी जन्मनाल, मेघ उसके स्तन एवं गर्जनशील मेघ उसके दुधारू स्तन हैं।

विश्वव्यचाश्चर्मौषधयो लोमानि नक्षत्राणि रूपम् ॥ १५ ॥

व्यापक आकाश चर्म, औषधियाँ लोम, एवं नक्षत्र उस चर्मपर होनेवाले भिन्न-भिन्न चितकवरे चिह्न हैं।

देवजना गुदा मनुष्या आन्त्राण्यत्रा उदरम् ॥ १६ ॥

देवजन उस विराट्की गुदा, मनुष्य आँत एवं भोजनशील प्राणी उदरभाग हैं।

अथर्ववेद ८ वें काण्डके १० वें सूक्तमें कहा है :

तस्या इन्द्रो वत्स आसीद् गायत्र्यऽभिधान्यभ्रमूधः ॥ १२ ॥

उस विराट्रूप गायके इन्द्र वत्स हैं। गायत्री बाँधनेकी रस्सी है। स्तनमण्डल मेघ है।

बृहच्च रथन्तरं च द्वौ स्तनावास्तां
यज्ञायज्ञियं च वामदेव्यं च द्वौ ॥ १३ ॥

चार स्तन इरावती, रथन्तर, यज्ञायज्ञिय और वामदेव्य सूक्त हैं। इससे चार प्रकारका दुग्ध प्राप्त होता है : औषधि, व्यचस्, अपस और यज्ञ।

अथर्ववेदके ३रे काण्डके १४वें सूक्तमें कहा है :

सं वो गोष्ठेन सुषदा सं रय्या सं सुभूत्या।
अहर्जातस्य यन्नाम तेना वः सं सृजामसि ॥ १ ॥

हे मनुष्य ! तुम लोग गौओंके (सुषदा गोष्ठेन) सुखसे रहनेयोग्य शालाओंका निर्माण-कर उन्हें (संसृजामसि) सुख प्राप्त कराओ। (रय्यासं) उन्हें बुद्धिकारक पदार्थ खिलाओ, (सुभूत्या) उनसे अच्छी सन्तान एवं सम्पत्ति प्राप्त करो।

अथर्ववेदके ९वें काण्डके ७वें सूक्तमें कहा है :

अभ्रं पीबो मज्जा निधनम् ॥ १८ ॥

उस विराट् पुरुषका मेघ मेद एवं सम्पत्ति मज्जा है।

अग्निरासीन उत्थितोऽश्विना ॥ १९ ॥

अग्नि उसके बैठनेका आसन, अश्विनीकुमार, दिवारात्रि उसके खड़े होनेके आसन हैं।

इन्द्रः प्राङ् तिष्ठन् दक्षिणा तिष्ठन् यमः ॥ २० ॥

उसकी प्राची दिशा इन्द्र एवं दक्षिण दिशा यम है ।

प्रत्यङ् तिष्ठन् धातोदङ् तिष्ठन्त्सविता ॥ २१ ॥

उसकी पश्चिम दिशा धाता एवं उत्तर दिशा सविता है ।

तृणानि प्राप्तः सोमो राजा ॥ २२ ॥

ईश्वरीय शक्ति तृण एवं वनस्पति सोम राजा हैं ।

मित्र ईक्षमाण आवृत्त आनन्दः ॥ २३ ॥

कृपादृष्टिसे देखना मित्र एवं व्यापक होनेपर आनन्द ।

एतद् वै विश्वरूपं सर्वरूपं गोरूपम् ॥ २५ ॥

गौके रूपमें यह परमात्माके विराट् रूपका वर्णन है ।

उपैनं विश्वरूपाः सर्वरूपाः पशवस्तिष्ठन्ति ॥ २६ ॥

इस प्रकार जो परमात्माके विराट् रूपको जानता है, वह पशुमात्रमें परमात्मस्वरूपका प्रत्यक्षदर्शन करता है ।

अथर्ववेदके ३रे काण्डके १५वें सूक्तमें कहा है :

संजग्माना अबिभ्युषीरस्मिन् गोष्ठे करीषिणीः ।
बिभ्रतीः सोम्यं मध्वनमीवा उपेतन ॥ ३ ॥

हे गौओ ! तुम सब (अस्मिन् गोष्ठे अविभ्युषीः) इस गोशालामें निर्भय होकर रहो । (संजग्माना) परस्पर एकत्रित होकर (करीषिणीः मधु बिभ्रतीः) गोबर-गोमूत्र जिनका उपयोग गुणयुक्त है, एवं दुग्ध धारण कर रोगरहित होकर यहाँ रहो ।

मया गावो गोपतिना सचध्वमयं वो गोष्ठ इह पोषयिष्णुः ।
रायस्पोषेण बहुला भवन्तीर्जीवा जीवन्तीरुप वः सदेम ॥ ६ ॥

(मया गोपतिना) मुझ गोपतिके साथ हे गौओ तुम (समध्वं) प्रेमसे साथ रहो । (अयं वः गोष्ठः) यह तुम लोगोंके रहनेका सुन्दर स्थान है । (इह पोषयिष्णुः) यहाँ तुम्हारी देखरेखके लिए उत्तम अधिकारी रहता है । (जीवावः) इसलिए भगवान् कृष्ण अपनी गौओंके साथ रहे और यही गोपालत्व उनके पुरुषार्थका मूल आधार है ।

●

राष्ट्रपुरुष श्रीकृष्णकी 'राष्ट्रवाद-संहिता' : गीता

श्री 'अङ्गार'

★

भगवान् श्रीकृष्णको जहाँ अध्यात्मवादी लोग अध्यात्मके चरम प्रासव्य तत्त्वके रूपमें जानते हैं, वहीं राष्ट्रवादी उन्हें लोकोत्तर राष्ट्रपुरुष मानते हैं। उनके समग्र जीवन-पर दृष्टि दौड़ानेपर ऐसी अनेक घटनाएँ मिलेंगी, जिनमें उनकी राष्ट्रपुरुषता भलीभाँति निखर उठी है। इन सबमें उनके महान् राष्ट्रपुरुष होनेका सबसे बड़ी और ठोस घटना है, उनके द्वारा संसारको गीता जैसी बहुत बड़ी 'राष्ट्रवाद-संहिता' का प्रदान करना। आप कहेंगे, गीता राष्ट्रवाद-संहिता कैसे ? तो देखिये :

सुना जाता है कि स्वतन्त्रताके दीवाने भारतमाताके लाड़ले कितने ही नवयुवक क्रान्तिवीर फाँसीके तख्तेपर झूलते समय गीतामाताको छातीसे लगाये रहे। जिनके पास वह न थी, उन्होंने भी अन्तिम इच्छाके तौरपर उसे माँगकर गले लगाया और सदाके लिए मृत्युञ्जयी बन गये !

आखिर गीतामें ऐसी कौन-सी कीमिया है, जो मृत्युसे जूझनेवाले इन भारत-वीरोंको बरबस आकृष्ट किये रही ? साधारण दृष्टिसे देखनेपर तो वह महाभारतका एक छोटा-सा प्रकरण है। महाभारत-युद्धके आरम्भमें योगेश्वर कृष्ण और धनुर्धर पार्थके संवादरूपमें बादरायण भगवान् वेदव्यासने उसे प्रस्तुत किया और धृतराष्ट्र एवं संजयके प्रश्नोत्तररूपमें वह सुलभ हुई !

फिर, इस ग्रन्थका इतिवृत्तात्मक प्रथम अध्याय छोड़ दें, तो शेष १७ अध्यायोंमें प्राय: अध्यात्म-चर्चा ही पायी जाती है। स्वराज्यके लिए बलिदानी वीरोंको मात्र उस अध्यात्म-चर्चासे कितना समाधान हो सकता है, यह सोचनेकी बात है। उनकी प्रबलतम बलिदान-निष्ठा अन्य निष्ठाओंको कहाँतक अपने साथ प्रश्रय दे सकती है ? उनमें जन्म-भूमिको दासताके बन्धनोंसे मुक्त करनेका भीषण भाव-पावक धधकता रहता है और वे उनमें स्वयंकी पूर्णाहुति देकर स्वातन्त्र्य यज्ञके अध्वर्यु बननेके लिए उतावले रहते हैं। अत: विवशत: आध्यात्मिक-ऐतिहासिक भावोंसे अतिरिक्त कोई ऐसा भाव गीतामें ढूँढ़ना होगा, जो एकबार दिखाई पड़नेके साथ ही इन मृत्युञ्जयी वीरोंके अन्तरको छू लेता हो।

इस दृष्टिसे खोज करनेपर हम कह सकते हैं कि गीता महान् राष्ट्रपुरुष कृष्ण द्वारा गायी गयी स्वराज्यवादकी बहुत बड़ी और कदाचित् सर्वप्रथम प्रायोगिक 'संहिता' है, जिसमें साम्राज्यवादपर विजय पानेके लिए स्वराज्यवादियोंका बहुमूल्य मार्गदर्शन भरा हुआ है और जिसकी फलश्रुति है, साम्राज्यवादको नामशेष कर स्वराज्यवाद या राष्ट्रवादकी प्रस्थापना !

इस विषयको ठीकसे समझनेके लिए गीताके मूलग्रन्थ महाभारत महाकाव्यमें रूपक-शैलीसे आये प्रमुख पात्रोंके नामों तथा गीतारम्भके पूर्व महाभारतके उद्योगपर्वके अन्तर्गत 'संजययानपर्व' की कथा-वस्तुपर ध्यान देना होगा।

जहाँतक महाभारतमें वर्णित पात्रोंका सम्बन्ध है, कहना होगा कि धर्मराज युधिष्ठिर, अमितबली भीम, पार्थ अर्जुन, वीरा द्रौपदी आदि पाण्डववर्गीय और दुर्योधन, दुःशासन, दुःशला आदि कौरववर्गीय नाम उस महाकाव्यके महाकविने रूपक-शैलीमें ही चुने हैं। उनमें 'धृतराष्ट्र' नाम उस साङ्ग समग्रवस्तुविषय रूपकका मुख्य विशेष्य-सा है। वही कविकी उस रूपक-शैलीका सुमेरु मणि है।

'धृतराष्ट्र' शब्दमें दो पद हैं : धृत + राष्ट्र। धृत = धारण कर लिया, हड़प लिया है 'राष्ट्र' जिसने। तात्पर्य, अन्यायसे पराया राष्ट्र हड़पनेवाला साम्राज्यवादी मनोवृत्तिका व्यक्ति धृतराष्ट्र है। वह कर्तव्य-अकर्तव्य और अधिकार-अनधिकारका विवेक-विचार न कर सदैव जिस किसी तरह अपना साम्राज्य कायम रखनेके फिराकमें लगा रहता है। महाभारतमें धृतराष्ट्रका चरित्र बारीकीसे देखनेपर यह बात स्पष्ट हो जाती है। इस दृष्टिसे उस धृतराष्ट्रके सभी अनुयायी, अनुगामी, पक्षपाती 'धृतराष्ट्र' यानी घोर साम्राज्यवादी कहे जा सकते हैं।

इसीका प्रतिशब्द है 'हृतराष्ट्र' जो कदाचित् महाभारतमें किसी पात्र-विशेषके लिए प्रयुक्त न होनेपर भी युधिष्ठिर और उनके पक्षपाती पाण्डवोंके लिए सटीक लागू हो सकता है। हृत = छिन गया है राष्ट्र जिनका वे स्वराज्यवादी, राष्ट्रवादी युधिष्ठिर और उनके अनुयायी भीम-अर्जुन आदि भाई तथा अन्य भी तत्पक्षीय 'हृतराष्ट्र' हैं। ये सर्वथा धर्मपक्षीय थे। धर्मराज युधिष्ठिर तो 'अजातशत्रु' ही कहलाते थे और उनके भाई शेष चार पाण्डव और तत्पक्षीय वीर योद्धाओंने भी सदा धर्मका ही साथ दिया। छलमय द्यूतसे राज्य छीन लेने-पर भी धर्मराजने सदैव धर्मका पल्ला पकड़ रखा और १२ वर्ष वनवास और १ वर्ष अज्ञात-वासके असीम कष्ट झेले। अन्तमें भगवान् कृष्णके माध्यमसे उन्होंने पूरे राज्यके बदले केवल ५ गाँवोंपर सन्धिका प्रस्ताव भेजा, पर 'बिना युद्धके सुई बराबर भी राज्य न देने'की बात कहकर धृतराष्ट्र-पक्षके प्रमुख दुर्योधनने भगवान्‌की वह बात ठुकरा दी। तब विवशतः क्षत्रिय-वीर धर्मराजको 'कण्टकेनैव कण्टकम्'का राजनैतिक सूत्र पकड़कर 'धर्मयुद्ध'का रास्ता अपनाना पड़ा। इस तरह सारा महाभारत-युद्ध 'हृतराष्ट्र बनाम धृतराष्ट्रोंका युद्ध' कहना होगा। इस युद्धमें अन्ततः साम्राज्यवादी धृतराष्ट्र बुरी तरह हारा और स्वराज्यवादी हृतराष्ट्रोंकी शानदार विजय रही।

ज्ञातव्य है कि स्वराज्यवाद स्वयम्‌में धर्मपक्ष है, जब कि साम्राज्यवाद मूलतः अधार्मिक पक्ष। जब एक मूढ पक्षी भी पिंजड़ेमें बन्द रहकर सुखकी साँस नहीं ले पाता और उससे

पिण्ड छुड़ाकर खुले आकाशमें उन्मुक्त विचारणकी सोचता रहता है, तो समझके ठेकेदार मानव क्योंकर स्वशासित स्वराज्यकी चाह न रखे ? वह तो उसकी प्रकृतिसिद्ध कामना है। अतएव उसे धर्मपक्षीय ही कहना होगा। इसके विपरीत साम्राज्यवाद शत-शत स्वराज्य-वादियोंके स्वातन्त्र्यका अपहरण कर अपने उचित-अनुचित और स्वच्छन्दी तन्त्रपर उन्हें जीनेके लिए विवश किया करता है। दूसरे शब्दोंमें उन्हें अपना 'गुलाम' बनाता है जो सर्वथा प्रकृति-विरुद्ध है। अतएव उसे अधर्मपक्ष ही कहना होगा।

यह भी ध्यान रखनेकी बात है कि भगवान् सदैव धर्मका पक्ष लेते हैं। उनकी सत्ता या अवतरणा धर्मके रक्षार्थ ही हुआ करती है। धर्मपक्षीय स्वराज्यवादियोंका उदय सत्य, धर्म, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, समता, पवित्रता, देशभक्ति, त्यागवृत्ति आदि शुभ-गुणोंसे हुआ करता है। उनका धवल यश विश्वमें सर्वोपरि फैलता है, जो सदैव सबके मार्गदर्शनकी सामर्थ्य रखता है।

इसके विपरीत साम्राज्यवादियोंका व्यवहार कपट और छल-छद्मसे शुरू होता है। उनका मध्य चिन्तासे भरा और अन्त सर्वनाशके साथ हुआ करता है। गीताका आरंभ साम्राज्यवादियोंका मध्यकाल है। अतएव उसके प्रथम श्लोकमें धृतराष्ट्र द्वारा चिन्ता प्रकट करना ('किमकुर्वत सञ्जय !') उचित ही है।

साम्राज्यवादी सदैव विवेकहीन, मोहसे अन्धे और तामस-प्रकृति हुआ करते हैं। फिर धृतराष्ट्र तो अन्तर और बाह्यसे भी अन्धा रहा। अन्धेकी स्त्री गांधारी मूलतः अन्धी न होने-पर भी पतिका अनुसरण करनेके लिए उसे भी अन्धा बनना पड़ा। नहीं तो अपने पुत्रों कौरवों द्वारा लाक्षागृहमें भाई पाण्डवोंको जीते जी जलानेका षड़यन्त्र रचने और भरी सभामें गुरुजनोंके बीच कुलवधू पाञ्चालीको नग्न करने जैसे जघन्य कृत्योंको क्योंकर उन्होंने नहीं रोका ? 'प्रसूतिर्वरदानजा' इस वचनके अनुसार इस अन्धे राजाकी उत्पत्ति ब्रह्मस्वरूप व्यासदेवकी कृपासे होनेपर भी क्षेत्र तामस होनेके कारण उसका—धृतराष्ट्रका—तामस, विवेक-हीन और मोहग्रस्त होना कोई अनहोनी बात नहीं। किसी साम्राज्यवादी व्यक्तित्वके निखारके लिए इस सभी गुणोंका (?) रहना स्वाभाविक है।

ऐसे अन्तर्बाह्य अन्ध, तमोगुणी और साम्राज्यवादकी जीती-जागती मूर्ति धृतराष्ट्र सोचता है कि तरह-तरहके अत्याचारोंसे संजोया साम्राज्य अब हाथसे निकल जानेकी स्थिति-पर पहुँच गया है। अवश्य ही राष्ट्रवादी, स्वराज्यवादी धर्मपक्ष संख्या और साधनोंमें अल्पबल है। फिर भी अपनी दृढ स्वराज्य-निष्ठा और धर्मके बलपर वह धर्मयुद्ध महाभारत छेड़ अन्तिम निर्णय करा लेना चाहता है। समरांगणपर दोनों पक्षोंकी युयुत्सु सेना डट गयी है। अन्ततः निश्चित है कि साम्राज्यवादको यह युद्ध मँहगा पड़ेगा, जब कि स्वराज्यवादियोंके लिए सस्ता ही रहेगा। कारण, युद्धमें विजयी होनेपर भी साम्राज्यवादी पहलेसे ही हड़पे हुए राज्यसे अधिक तो कुछ पानेवाले नहीं। यदि हारे तो एड़ी-चोटीका पसीना एककर छल-छद्मसे किसी तरह हड़पा हुआ राज्य हाथसे छिन जायगा। इसके विपरीत स्वराज्यवादी जीतते हैं तो उन्हें अपना छिना हुआ राज्य वापस मिल जाता है, और हारे भी तो कुछ खोना नहीं, कष्ट तो झेल ही रहे है।

यही सब सोचकर महाभारत युद्धारम्भसे कुछ ही पूर्व साम्राज्यवादी धृतराष्ट्रने कूटनीतिका गहरा आखिरी दाँव चला, जो महाभारतके उद्योग-पर्वके १३ अध्यायों (२० से ३२ तक)में वर्णित है। इसे 'संजययान पर्व' कहते हैं। वास्तवमें साम्राज्यवादी धृतराष्ट्रके इसी कूटनीतिक दाँवसे अजेय गाण्डीवी, कपिध्वज अर्जुन भी समरांगणके बीच विषादसे धर दबोचा गया और उसी विषादको मिटानेके लिए भगवान् योगेश्वर कृष्णने उसे माध्यम बनाकर संसारको विषाद-शमनकी अमूल्य चिन्तामणि गीता भेट कर दी।

उद्योगपर्वके इन १३ अध्यायोंमें साम्राज्यवादी सम्राट् धृतराष्ट्र द्वारा प्रेषित कूटनीतिक प्रतिनिधि संजय पाण्डवोंके पास आकर कहता है: 'पाण्डवो! महाराज धृतराष्ट्र आप लोगोंपर अटूट प्रेम रखते हैं। सभी पाण्डवोंका हृदयसे हित चाहते हैं। बार-बार आप लोगोंकी शिष्टता, साधुता, सहनशीलताका बखान किया करते हैं। फिर भी बेचारे लाचार हैं। साम्राज्य-मदसे मत्त पुत्र कौरव उनकी एक नहीं सुनते। इसी कारण उनकी ओरसे आपके साथ हो रहे अन्यायको वे रोक नहीं पाते। किन्तु इसके लिए आप जैसे धर्मावतार और धर्मनिष्ठोंने यदि युद्ध--जैसा जघन्य मार्ग अपनाया तो वह कभी प्रशस्त नहीं। जन्मभर आप लोग कभी, किसी भी प्रसंगमें तनिक भी धर्मसे विचलित नहीं हुए। अब यदि युद्ध लड़ेंगे तो इससे दोनों कुलोंका सर्वनाश हो जायगा। इससे कुलके धर्म मिट जायँगे, स्त्रियाँ भ्रष्ट हो जायँगी। वर्णसंकरता पनपेगी। जिसका कटु-फल उभय कुलोंका अनन्त कालतक घोर नरकवास ही है।'

संजय आगे अपनी माया फैलाता हुआ कहता है: 'अजातशत्रो, धर्मराज! इस तरह निश्चय ही युद्ध नीचोंका मार्ग है। भले और धर्मात्मा उसे कभी नहीं अपनाते। आखिर कौरव भी आपके भाई ही हैं। पीछे गन्धर्वोंके साथ युद्धमें उनकी आप ही लोगोंने रक्षा की थी। तब क्या आप किसी समय अपने द्वारा रक्षित लोगोंका ही वध करेंगे? मान लें कि आप युद्धसे स्वराज्य पा ही जायँ, तो भी क्या वह शाश्वत बना रहेगा? वह तो नश्वर ही है। तब क्या इतने क्षुद्र लाभके लिए अपना बहुमूल्य धर्म खो देंगे? इसकी अपेक्षा तो भिक्षा माँगकर जीवन गुजारना कहीं बेहतर है। युद्धमें आप लोगोंको भीष्म, द्रोण जैसे पूज्यतम गुरुजनों एवं आचार्योंकी हत्या करनी पड़ेगी। समझमें नहीं आता कि कभी क्रोधका लेश न आने देनेवाले आपको आज हो क्या गया है? यह कैसी विपरीत मति हो गयी है? इसलिए मेरी हितकी सलाह है कि युद्धका विचार सर्वथा त्याग दें और शान्ति-सन्धिका मार्ग अपनायें।'

कूटनीतिके दाँत विषभरे होते हैं। छूते ही वे विवेकको अचेत कर देते हैं। धर्मराज युधिष्ठिरपर धृतराष्ट्रकी इस कूटनीतिका असर हुआ या नहीं, कहा नहीं जा सकता। लेकिन उनके अनुयायी और महाभारतके प्रमुख नेता अर्जुनपर निश्चय ही वह काम कर गयी! अतीतमें कभी भी युद्धको पीठ न दिखानेवाले, भारतवीर और नर-जातिके एकमात्र प्रतिनिधि अर्जुनको उस कूटनीति-सर्पिणीने डस लिया और उसका विवेक अचेत हो गया। समराङ्गणपर प्रतिपक्षमें अपने ही बन्धु-बान्धवोंको खड़ा देख मोहने उसे घेर लिया और वह युद्ध द्वारा स्वराज्य पानेका स्पष्ट निषेध करने लगा। युद्धके विरोधमें बन्धु-बान्धवोंका वध, कुलक्षय, वर्णसंकरता आदिकी लम्बी-चौड़ी बघारने लगा। स्वराज्यके बदले भीख माँगकर जीने तक वह

उतर आया। अधिक क्या, 'शस्त्र-संन्यास' लेकर चुपचाप कौरवोंके शस्त्रोंका लक्ष्य बननेमें ही अपनी 'क्षेमतरता' की भाषा बोलने लगा। विषादके वशीभूत हो बहुमूल्य प्राणतक गँवानेपर उतारू हो गया (इस प्रसंगमें महाभारतके उद्योगपर्वके अ० २५ श्लो० ८-९, २ तथा अ० २७ श्लो० २ से क्रमशः गीताके अ० १ श्लो० ३६, अ० २ श्लो० ५-६ विशेष तुलनीय हैं।)।

सचमुच साम्राज्यवादियोंकी विषकन्या कूटनीतिका लावण्य और हृदयमें भरे हलाहलको छिपा रखनेवाला उसकी वाणीका मधु, शहद बड़ा ही खतरनाक हुआ करता है! स्पष्ट है कि उसने भारतके एकमात्र नरके अदम्य शौर्यको आहत कर अपने कब्जेमें कर दिया!

महामोह और महाविषादके इन बन्धनोंको काटनेकी एकमात्र शक्ति महाराष्ट्रवादी महापुरुष षोडशकल महापति भगवान् श्रीकृष्णमें ही है। वह जादूगरोंका जादू है। वही नरोंमें, पुरुषोंमें रहनेवाली विभूति 'पौरुष' है : **पौरुषं नृषु** (गीता ७.८)।

अन्ततः गीतामें मोह और विषादके शुम्भ निशुम्भ नष्ट करनेवाली पौरुष-शक्तिके प्रतीक राष्ट्रिय महापुरुष श्रीकृष्णने ऐसी ऐसी युक्तियों, उक्तियों एवं अनुभवभरे तर्कोंसे साम्राज्यवादियोंके इस निर्णायक अन्तिम नीतिजालके एक-एक बन्धन काट डाले। काँटेसे काँटा निकालनेकी सूझबूझभरी कुशल राजनीति काममें लायी कि अर्जुनका सारा मोह-बन्धन और विवेक-पौरुषपर छाया विषादका कोहरा एकदम कट गया। उन्होंने स्पष्ट शब्दोंमें भारतीय नरोंके प्रतिनिधिको बता दिया :

'आततायीका वध क्षत्रियोंका परम धर्म है, अनुपेक्ष्य कर्तव्य है। उससे मुँह मोड़ना दया नहीं, कर्तव्यच्युति है। तुम किसीको न मारो, तो भी मैं तो महाकाल बन सबको निगनेवाला ही हूँ (**कालोऽस्मि लोकक्षयकृत् प्रवृत्तः** गीता ११.३२)। तुम मात्र निमित्त बन जाओ (**निमित्तमात्रं भव सव्य-साचिन्** गीता ११. ३३) और अपना क्षात्रधर्म भलीभाँति निबाहनेका आदर्श प्रस्तुत करो।'

अन्ततः वह भारतीय वीर प्रकृतिस्थ हो ही गया और हाथ जोड़कर बोलने लगा :

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाऽच्युत।
स्थितोऽस्मि गतसन्देहः करिष्ये वचनं तव॥

(गीता १८.७३)

भगवन्! आपके पौरुषभरे वचनोंसे मेरा मोह नष्ट हो गया। अज्ञान मिटा और स्वकर्म करनेकी भावना चित्तमें जाग उठी। इस बारेमें तनिक भी सन्देहका लेश नहीं रहा। अब जैसा आपका आदेश है, वचन पालन कर युद्धरूप स्वधर्मोचित कर्ममें जुट पड़ूँगा।'

इस प्रकार भगवान् कृष्णके पुरुषार्थभरे मार्गदर्शनके फलस्वरूप स्वराज्यनिष्ठा परसे साम्राज्यवादी कूटनीतिका राहु छूट गया और पार्थके शौर्यसे प्रभासित विजयश्रीने स्वराज्यवादी धर्मराजके गलेमें वरमाला पहना दी। जब गीताके पीछे इतनी ज्वलन्त स्वराज्यनिष्ठा काम कर रही है और वह सच्चे अर्थमें राष्ट्रपुरुष श्रीकृष्णकी पौरुषभरी राष्ट्रवाद-संहिता है, तो देशके लिए सर्वस्व समर्पण करनेवाले और साम्राज्यवादियोंको लोहेके चने चबानेवाले भारतके सपूत क्रान्तिवीर गीताको अपने बलिदानका संबल न बनायें तो किसे बनायेंगे ?

जबतक भारत-वसुन्धरापर राष्ट्रपुरुष श्रीकृष्णकी यह राष्ट्रवाद-संहिता रहेगी, भारतीय स्वराज्यनिष्ठापर कभी आँच नहीं आ सकती, महान् साम्राज्यवादविजयिनी इस स्वराज्यवाद-संहिताको देनेवाले पौरुषावतार श्रीकृष्णके पावन चरणोंमें हम इसी आशासे उनके जन्म-दिवसपर नतमस्तक हो रहे हैं।

●

वसुधाका स्वर्ग : वृन्दावन

श्री जगन्नाथ मिश्र "कमल"

सरस कथा सुन मुरलीधरकी, नव उमंग जगती है मनमें।
जहाँ बनी यह कथा वहाँके, दृश्य समाते हैं लोचनमें॥
जब सावनमें रिमझिम रसकी धारा बादल बरसाते हैं।
गोप-गोपियोंके झूले तरुकी डालोंपर लग जाते हैं॥
श्यामा-श्याम नहीं हैं, वर्षा-गीत गूँजकर उन्हें बुलाते।
ब्रज-वनिताओंके नयनोंसे आँसूके निर्झर झर जाते॥
जहाँ श्याम-श्यामाकी सुधिमें सिसक रहे हैं प्रतिपल कण-कण-
वसुधापर मनभावन पावन स्वर्ग-सदृश है वृंदावन॥
यमुनाकी लहरोंपर तिर-तिर सौरभ-बलित बयार।
इस बयारमें करते अनुभव पथिक, छिपा मोहनका प्यार॥
आते-जाते रुक जाते हैं केकी, कोकिल, काक, मराल।
कुछ क्षण ले विश्राम सोचते सफल यहाँ जीवनका काल॥
स्वर्ग-लोकसे झाँका करते, सुर-गन्धर्व खोल नभ-द्वार।
वृन्दावन फिर लीला-वन हो आये मोहन ले अवतार॥
मिलती ज्योति जहाँ जीवनको है प्रकाशमय वृन्दावन।
वसुधापर मनभानव पावन स्वर्ग-सदृश है वृन्दावन॥

●

पुरुषार्थीके लिए विष भी अमृत

श्री वासुदेव त्रिपाठी

★

– १ –

अन्धक और कुकुरवंशीय मथुराका सम्राट् कंस अपने भव्य राजप्रासादके सप्तमखण्डके मन्त्रणा-प्रकोष्ठमें रत्नजटित सिंहासनपर आसीन था। इस सप्तखण्डीय विशालतम सौधके मणिखचित द्वादश द्वारोंपर खड्गपट्टिकासे सन्नद्ध अनेक प्रहरी नियुक्त थे। सप्तम प्रकोष्ठ सम्राट्का गोपनीय मन्त्रणा-कक्ष था। कक्षका धरातल स्फटिकमणियोंसे जटित, अगरागुरु आदि विविध गन्धद्रव्योंसे सुवासित, कमनीय कुसुमोंसे समलंकृत, कमनीय परिचारिकाओंसे सेवित था। पार्श्वमें दो सुदर्शना बालाएँ चँवर डुला रहीं थीं। सम्राट्के श्यामल शरीरपर रक्तिमवर्णका उत्तरीय, कर्णमें ज्योतिर्मय मणिकुण्डल, बलिष्ठ भुजाओंमें स्वर्ण-भुजबन्ध सुशोभित थे। आज सम्राट्के मुखमण्डलपर स्वाभाविक तेजकी अपेक्षा मलिनता, निर्भीकताके स्थानपर कार्पण्यके भावोंको कोई भी पढ़ सकता था।

प्रमुख प्रतिहारी पार्श्वभागमें हाथ बाँधे खड़ा था। सम्राट्ने आज्ञा दी : 'विषकन्याओंकी नायिका पूतनाको उपस्थित करो।'

'यथा देव आज्ञापयति'—कहकर प्रतिहारी तीरकी तरह कक्षसे बाहर हो गया।

कुछ ही क्षणोंमें एक अप्रतिम कमनीय कान्तिवाली नारी प्रकोष्ठमें प्रविष्ट हुई। इस बालाका स्वाभाविक सौन्दर्य रतिको चुनौती दे रहा था। उसकी आकटि वेणियोंमें मल्लिका-पुष्प गुथे हुए थे। उससे सुवासित उत्तरीय एवं कंचुकी दूरसे ही झलक रही थी। कानोंमें मणिकुण्डल सुशोभित थे, जिनकी ज्योतिसे मुखपर लटकी अलकें और भी मनोहारी हो उठी थीं। उस नितम्ववती रमणीके कुच उन्नत और कठोर थे, किन्तु कटिप्रदेश क्षीणकाय :

तां केशबन्धव्यतिषक्तमल्लिकां बृहन्नितम्बस्तनकृच्छ्रमध्यमाम्।
सुवाससं कम्पितकर्णभूषणत्विषोल्लसत्कुन्तलमण्डिताननाम्॥

(भागवत १०.६.५)

यह लावण्यमयी नारी बाह्यरूपसे जितनी सुकोमल, जितनी मनोहारिणी तथा जितनी रूपवती थी, उसका अन्तस्तल उतना ही मलिन एवं क्रूर था। सम्राट् कंसने इस बालाको

पाँच वर्षकी वयसे ही थोड़ा-थोड़ा विष पिलाकर आज इस योग्य बना लिया था कि अब उस-पर किसी प्रकारके विषका प्रभाव नहीं पड़ सकता था। हाँ, इस षोडशवर्षीया बाला पूतनाके स्पर्शमात्रसे, आलिङ्गनमात्रसे, चुम्बन अथवा सहवाससे मानव क्या विषधर सर्प भी जीवित नहीं रह सकता था। तभी तो इसकी नियुक्ति विषकन्याओंकी सम्राज्ञीके रूपमें कर दी गयी थी।

सम्राट्ने पार्श्वमें खड़ी उस विषकन्याको लक्ष्य करके कहा : 'विषकन्ये! तुम जानती हो कि आज मथुरामें मेरा एकच्छत्र राज्य है। वैरी पिता उग्रसेन कारागारकी बेड़ियोंमें आबद्ध है। मगध-नरेश जरासन्धसे भी मेरी मैत्री हो चुकी है, महाप्रतापी सम्राट् शिशुपालसे भी मेरा कोई वैरभाव नहीं है। आज इस राज्यमें बिना मेरी आज्ञाके एक पत्ता भी नहीं हिल सकता। मैं अपनी सशक्त भुजाओंसे कालिन्दीके प्रवाहको अवरुद्ध कर सकता हूँ। आर्यावर्तके समस्त नरेशोंको अपने विषधर सायकोंसे विनष्ट कर सकता हूँ। आज मेरे जितने सामन्त हैं, सभी पूर्ण अधीन हैं। वे अपनी मुकुटमणियोंको मेरे चरणोंमें समर्पित कर गर्वका अनुभव करते हैं। किन्तु मेरा एक छोटा-सा सामन्त नन्द इधर तीन वर्षोंसे मुझसे भेंट ही नहीं करता। और तो और, इधर उसने वार्षिक कर एवं उपहार भी देना बन्द कर दिया है। विषकन्ये! जानती हो नन्द गर्वोन्मत्त क्यों हो उठा? अपने सम्राट्का तिरस्कार करनेका साहस उसे क्योंकर हुआ? इसका कारण मेरे ही मन्त्री वसुदेवका पुत्र कृष्ण है। आज उससे मुझे बड़ा भय है। जबसे नारद-वेषमें उस त्रिकालदर्शी ज्योतिषीने यह भविष्यवाणी की थी कि वसुदेवका पुत्र कृष्ण ही मेरा प्राणहन्ता होगा, तभीसे उसे मार डालनेको मैं यत्नशील हूँ। आज यह भार तुमको सौंप रहा हूँ। उसे समाप्त करनेका कार्य तुम ही कर सकती हो। जाओ, शीघ्र जाओ, कार्य करके लौटो। जो पुरस्कार चाहोगी, मिलेगा।'

'किन्तु राजन्, धृष्टता क्षमा हो। कृष्णमें अलौकिक शक्ति है, मैं उन्हें मार नहीं सकूँगी। उलटे उनके रोषसे मेरे ही प्राण जानेका भय है।'

पूतनाकी इस प्रकार आनाकानीसे सम्राट् क्रोधोन्मत्त हो गये, उनके बाहु फड़फड़ाने लगे। अधरोष्ठ प्रकम्पित हो उठे। तुरन्त पुनः आज्ञा हुई : 'कृष्णको जाकर मारो, अन्यथा खड्गसे तुम्हारे दो टुकड़े कर दिये जायँगे।'

विषकन्याने प्रथम आज्ञाको श्रेयस्कर समझकर उसे ही वरण किया और प्रकोष्ठसे बाहर निकल गयी।

× × ×

दाशरथी रामके समकालीन यदुवंशमें मधु नामक राजा था। उसके पुत्र लवणमधुने कालिन्दीके समीप ही अपना राज्य स्थापित किया था। वहाँ उसने एक अत्यन्त सुन्दर नगरी बसायी थी, जिसका नामकरण उसीके नामपर 'मधुपुरी' किया गया था। कालान्तरमें उसको मथुराके नामसे अभिहित किया जाने लगा। रामके अनुज शत्रुघ्न इस लवणमधुको मारकर मथुरामें कई वर्षोंतक शासन करते रहे। कालान्तरमें यदुवंशी सम्राट् सात्वत भीमके चार

पुत्रोंमें से अन्धक और वृष्णि अत्यन्त प्रसिद्ध हुए। महाराज अन्धकके कुकुर और भजमान नामक दो प्रख्यात पुत्र हुए। कुकुरको मथुराका तथा भजमानको मथुराके आसपासका राज्य मिला। पुनः सम्राट् कुकुरके आहुक नामक पुत्रसे देवक और उग्रसेन नामक पुराणप्रसिद्ध पुत्रोंका आविर्भाव हुआ। देवककी देवकी आदि सात पुत्रियाँ एवं चार पुत्र हुए, जब कि उग्रसेनके कंस आदि नौ पुत्र एवं पाँच पुत्रियाँ हुईं। उधर अन्धकके अनुज वृष्णिके प्रपौत्र शूरसेनसे वसुदेव आदि दस पुत्रोंका आविर्भाव हुआ।

मथुराका राज्य उग्रसेनको मिला। वे अपने अनुज देवकके साथ प्रजाकी सेवा करते हुए न्यायसंगत ढंगसे शासन करने लगे। शूरसेनके पुत्र वसुदेव भी मथुरा-राज्यके उच्चपदपर आसीन हुए। देवकने अपने सातों पुत्रियों (देवकी आदि) का पाणिग्रहण वसुदेवसे करा दिया। किन्तु उग्रसेनके भाग्यमें बहुत दिनोंतक राज्यका सुखभोग नहीं लिखा था। उनका आततायी, क्रूरकर्मा, दुर्विनीत, महत्त्वाकांक्षी पुत्र कंस उन्हें कारागारमें डालकर स्वयं शासक बन बैठा।

मथुराके उत्तरमें हस्तिनापुरका विशाल साम्राज्य था। इसकी पूर्वी सीमातक मगध-नरेश जरासन्धका राज्य था। मथुराके पश्चिमोत्तरमें वृन्दा नामक एक महावन था। इसके निकट ही कालिन्दी प्रवाहित थी। कालिन्दीके उस पार नन्द नामक सामन्तका निवास-स्थल नन्दगाँव था। ये नन्द वसुदेवके अभिन्न मित्र थे। कंसके डरसे अपने पुत्र कृष्णके लालन-पालनका भार उन्होंने नन्दके कंधेपर डाल रखा था। यहींपर कृष्णका बाल्य, शैशव और कैशोर व्यतीत हुआ।

× × ×

विषकन्या पूतना यमुना नदी पारकर नन्दगाँव पहुँच गयी। वह अपनी मधुर मुस्कान और कटाक्षपूर्ण चितवनसे समस्त व्रजवासियोंका चित्त हरण कर रही थी। वह स्वयं तो लावण्यमयी थी ही, उसकी वेणिओंमें मल्लिकाके पुष्प गुथे हुए थे। कमलके समान कमनीय हाथोंमें दो रक्तकमल भी सुशोभित थे। वह नन्दके गृहमें उसी प्रकार प्रविष्ट हुई, जैसे कमला कमलापतिके गृहमें प्रविष्ट हो गयी हों :

वल्गुस्मितापाङ्गविसर्गवीक्षितैर्मनो हरन्तीं वनितां व्रजौकसाम्।
अमंसताम्भोजकरेण रूपिणीं गोप्यः श्रियं द्रष्टुमिवागतां पतिम्॥

(भागवत, १०.६.६)।

सरल-हृदय नन्द और यशोदाके घरकी वह अतिथि बन गयी। कृष्ण इस नवागता तरुणीको देखते ही कंसके षड़यन्त्रसे अवगत हो गये। पूतनाने शिशु कृष्णको स्तनपान करानेका निश्चय किया। योगेश्वर कृष्ण अपनी मधुर मुस्कानके साथ गरल पान करते रहे और तबतक करते रहे, जबतक उसके प्राणोंका पान उन्होंने नहीं कर लिया।

सम्राट् कंसका यह अजेय अस्त्र भी निष्फल रहा। विषकन्या पूतनाकी मृत्युका सन्देश पाकर मथुरानरेश भयसे कांपने लगे। उनकी इन्द्रियाँ शिथिल हो गयीं, निश्चेष्ट होकर

वे शय्यागर लेट गये। किन्तु षड़यन्त्रकारी पुरुष अपने दुश्चक्रोंसे, अपनी दूषित योजनाओंसे कभी विरत नहीं होता।

— २ —

उधर कृष्ण बड़े होकर गोचारण करने लगे। मथुरासे वृन्दावन तकके प्रदेश, तमाल, ढाक, पलाश आदिके सघन वनोंसे आच्छादित थे। बीच-बीचके मैदानोंमें हरी घास लगी थी। कालिन्दीके सैकतमय तटपर नागोंका नायक कालिय रहता था। आर्येतर-जातिका होते हुए भी इस कालियको कंसका संरक्षण प्राप्त था। वृन्दावनके आसपासके प्रदेशोंका वह सामन्त महाराज कंसके पूर्ण अधीन था। वृन्दावनके कालियदह नामक स्थानपर रहनेके कारण उसे कालियके नामसे भी जाना जाता था। सम्राट् कंसने अपने राज्यकी स्थिति सुदृढ़ रखनेके निमित्त उसकी सुरक्षाके लिए अनेक वीरयोद्धाओंको नियुक्त कर रखा था; जिनमें कालिय, वत्स, वक, अघ, चाणुर, मुष्टिक आदि सुभटोंकी ख्याति थी। कालिय नागवंशका होनेके कारण बाण-विद्यामें अत्यन्त निपुण था। नागोंकी यह विशेषता थी कि वे बाणोंको विषयुक्त करनेमें सिद्धहस्त थे। फिर, कालियके तीक्ष्ण गरलयुक्त सायक तो सर्पफणके समान महाविषैले हुआ करते थे।

× × ×

आज सम्राट् पुनः अपने सुरम्य सप्तम प्रकोष्ठमें मणिजटित सिंहासनपर विराजमान था। उसके समक्ष वही कालिय नामक नाग-सरदार हाथ बाँधे खड़ा था। कंसने विषण्ण मनसे कहा : 'कालिय ! तुम जानते हो कि कृष्णसे मुझे बड़ा ही भय है। उसपर विषकन्याका प्रयोग भी असफल रहा। विषयुक्त कमनीय कान्तिवाली पूतनाका भी प्राणान्त हो गया। अब तुम्हारे ऊपर कृष्णके मारनेका भार सौंपा जाता है। सुना है कि व्रजवासियोंके साथ कभी-कभी, कृष्ण गोचारण करता हुआ वृन्दावन आ जाता है। सर्वप्रथम तुम कालिन्दीके जलको विषयुक्त कर डालो। यदि कृष्ण, उसकी गायें और अन्य व्रजवासी विषयुक्त जलपानके कारण मृत्युके ग्रास न बन सकें, तो तुम कालिन्दीकी अपार जलराशिके एक अलक्ष्य स्थलसे अपने सर्पवत् तीक्ष्ण सहस्र बाणोंसे उन सभीको क्षत-विक्षत कर डालो।'

'यथा देव आज्ञापयति'—कहकर कालिय, प्रकोष्ठसे बाहर चला गया। अब कंस आश्वस्त हो गया कि कृष्णका प्राणान्त होना निश्चितप्राय है।

× × ×

वास्तवमें युगोंके पश्चात् किसी असाधारण, अलौकिक कालजयी व्यक्तित्ववाले पुरुषका आविर्भाव होता है, जो स्वयं अपने युगका निर्माण करता है और युगान्तरोंतक उसका प्रभाव जनमानसपर अङ्कित रहता है। कृष्ण ऐसे ही युगस्रष्टा पुरुष थे। वे स्वामी थे अनेक पारमिताओंके। द्रष्टा थे भूत, भविष्य, वर्तमानके। प्रापक थे अनेक सिद्धियोंके। अधिपति थे अपरिमित गुह्य शक्तियोंके, ज्ञाता थे राजसंचालनकी कूटनीतियोंके, ईश थे अनेक निधियोंके,

निपुण थे अनेक शस्त्रों एवं शास्त्रोंके ज्ञानमें। दुष्ट सुभटोंके लिए वे वज्रके समान कठोर थे साधारण जनोंके लिए नररत्न थे। कामिनियोंके लिए मूर्तिमान् कामदेव थे। दुष्ट राजाओंको दण्ड देनेवाले शासक थे। सज्जनोंके वे रक्षक थे और वृद्धोंके लिए थे शिशु!

शीतल-मंद-सुगन्ध वायु प्रवाहित हो रही थी, सूर्यकन्या कालिन्दीके तटवर्ती प्रदेश वृन्दावनमें तमाल और कदम्बके सघन कुंज निसर्गतः निर्मित थे। कालिन्दी निर्मल नीलिम जलराशिसे परिपूर्ण थी। उसकी धारा कहीं मन्दगतिसे प्रवाहित थी, तो कहीं-कहीं आवर्तमान तरङ्गें किञ्चित् ऊर्ध्वगामी हो उठती थीं। सैकतमय तटवर्ती प्रदेशोंके निकट स्वल्प-जलराशिमें रक्तिमवर्णके कमल प्रफुल्लित थे। हरित नलिनीपत्रों और मृणालोंका सहारा लेकर हंसगण अपनी प्रेमिकाओंके साथ विहार कर रहे थे। पार्श्वमें ही बकपंक्ति और सारसगण कलरव कर रहे थे, जिससे कालिन्दीकी शोभा द्विगुणित हो उठी थी। कहीं निर्मल जलराशिमें शैवाल आच्छादित थे, जिनके मध्य कुमुदिनी नवागत वधूकी तरह मन्द-मन्द मुस्करा रही थी। मत्स्यगण निर्भय होकर शैवालपर विचरण कर रहे थे। कहीं-कहींपर तटवर्ती प्रदेश वेणुवनसे आच्छादित थे, जिनके मध्य कूर्मगणने अपने निवासके लिए गह्वर बना रखा था।

× × × ×

एक दिन श्रीकृष्ण अपने सखा ग्वाल-बालोंके साथ यमुना-तटपर गये। उस दिन बलरामजी उनके साथ नहीं थे। प्रचण्ड धूपसे गौएँ और ग्वाल-बाल अत्यन्त पीड़ित हो रहे थे। प्याससे उनके कण्ठ सूख रहे थे। अतः उन्होंने यमुनाजीका विषैला जल पी लिया। उस जलके पीते ही सब गौएँ और ग्वाल-बाल प्राणहीन होकर यमुनाजीके तटपर गिर पड़े। उन्हें ऐसी अवस्थामें देख योगेश्वर श्रीकृष्णने अपनी अमृतवर्षिणी दृष्टिसे उन्हें जीवित कर दिया।

कालिय नागके विषकी गर्मीसे यमुनाका जल खौलता रहता था। यहाँतक कि उसके ऊपरसे उड़नेवाले पक्षी भी झुलसकर उसमें गिर जाया करते थे। उसके विषैले जलकी उत्ताल तरंगोंका स्पर्शकर तथा उसकी छोट-छोटी बूँदें लेकर जब वायु बाहर आतीं और तटके घास-पात वृक्ष एवं पशु-पक्षी आदिका स्पर्श करतीं तो वे उसी समय मर जाते थे। श्रीकृष्णने देखा, कालियके विषका भी एक प्रचण्ड वेग है और वह भयानक विष ही उस नागका महान् बल है। तब वे कमरमें फेंटा कसकर एक बहुत बड़े कदम्बवृक्षपर चढ़ गये और वहाँसे ताल ठोंककर उस विषैले जलमें कूद पड़े। उनके कूदनेसे कालियदहका जल इधर-उधर उछलकर चार सौ हाथतक फैल गया। श्रीकृष्ण मतवाले गजराजके समान वहाँ क्रीड़ा करते हुए जल उछालने लगे। उनकी भुजाओंकी टक्करसे जलमें बड़े जोर-जोरका शब्द होने लगा।

कुंडके भीतर रहनेवाले कालियनागको वह सहन नहीं हुआ। उसने श्रीकृष्णको मर्मस्थानोंमें डँसकर अपने शरीरके बन्धनसे उन्हें जकड़ लिया। श्रीकृष्ण नागपाशमें बँधकर कुछ क्षणोंके लिए निश्चेष्ट-से हो गये। यह देख उनके प्यारे सखा ग्वाल-बाल बहुत ही पीड़ित

हुए और भय एवं दु:खसे मूर्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़े। गाय-बैल, बछिया और बछड़े भी दु:खसे डकराने लगे। श्रीकृष्णकी ओर ही उनकी टकटकी बँधी थी।

× × × ×

इधर व्रजमें भयङ्कर उत्पात प्रकट होने लगे। शीघ्र ही घटित होनेवाली किसी अशुभ-घटनाकी आशङ्कासे व्रजवासी थर्रा उठे। वे सब-के-सब श्रीकृष्णको देखनेकी लालसासे घर-द्वार छोड़कर निकल पड़े और खोजते-खोजते कालियदहपर आ पहुँचे। श्रीकृष्णके शरीरको नागपाशमें आबद्ध एवं ग्वाल-बालोंको अचेत पड़ा देख उन सबके हृदयमें बड़ी पीड़ा हुई। माता यशोदा कालियदहमें कूदने जा रही थीं, किन्तु गोपियोंने पकड़ लिया। नन्द भी दहमें प्रवेश करने लगे; किन्तु बलरामजीने उन्हें किसी तरह समझा बुझाकर रोका।

व्रजवासियोंको दु:खी देख भगवान् श्रीकृष्णने क्षणभरमें अपना शरीर फुलाकर खूब मोटा कर लिया। इससे साँपका शरीर टूटने लगा। श्रीकृष्ण भी उसके साथ खेलते हुए पैंतरा बदलने लगे। वे उसके बड़े-बड़े सिरोंको दबाकर उसपर सवार हो गये, उसके मस्तकोंकी मणियोंके स्पर्शसे श्रीकृष्णके सुकुमार तलुओंकी लालिमा और भी बढ़ गयी। वे कालियके फणोंपर कलापूर्ण नृत्य करने लगे। उसके एक सौ एक फन थे। वह अपने जिस सिरको ऊँचा उठाता, उसीको श्रीकृष्ण अपने पैरोंकी चोटसे कुचल डालते। इससे कालिय नागकी जीवनशक्ति क्षीण हो गयी। उसका एक-एक अंग चूर-चूर हो गया। उसके मुँहसे खूनको उलटी होने लगी। अब उसे भगवान्की स्मृति हुई और वह उनकी शरण गया। नागपत्नियों और नागने भी श्रीकृष्णकी स्तुति की। उन्होंने आदेश दिया : 'तुम यमुनाका कुण्ड छोड़कर रमणक द्वीपमें चले जाओ। वहाँ तुम्हें कोई भय नहीं प्राप्त होगा।'

नागने श्रीकृष्णकी आज्ञा शिरोधार्य की और सपरिवार वहाँसे चला गया।

•

कर्म करो

कर्मसे निर्लिप्त कैसे रहा जाय—इस तत्त्वको जानकर पूर्वकालके मुमुक्षुओंने भी निश्चय ही कर्म किये हैं; अतः तुम भी अपने पूर्वजों द्वारा पूर्वकालसे किये गये कर्मका ही अनुष्ठान करो। कर्मसे, पुरुषार्थसे कदापि मुँह न मोड़ो।

•

श्रीकृष्णका पौरुष : जरासंधकी कसौटीपर

आचार्य श्री सीताराम चतुर्वेदी

★

[जरासंध अपने जमानेका लौहपुरुष था। जराने उसे इस तरह संधित कर दिया था कि कोई भी उसे भंग नहीं कर सकता था। भगवान् कृष्णके पौरुषके लिए वह एक चुनौती था। लेकिन उन्होंने न केवल उसे १७ बार समरांगणसे भगा दिया, प्रत्युत उसके साथी कालयवनका, ऊपर ही ऊपर, कालको ग्रास चढ़ा दिया; नकली वासुदेव बननेवाले उसके सहयोगी पौण्ड्रकके धुर्रे उड़ा दिये और अन्ततः दूर रहकर अपने सूझ-बूझभरे पौरुषसे उसे भीमसे चिरवाकर सदाके लिए नामशेष कर दिया। आचार्य चतुर्वेदीकी रसभरी ओजस्विनी लेखनीद्वारा चित्रित श्रीकृष्णका यह पौरुष आगेकी पंक्तियोंमें पढ़िये।—सम्पादक]

जब जरासंध सत्रहवार युद्धसे भागा !

उन दिनों जरासंधकी बड़ी धाक थी। वह मगधपर राज करता था, जिसे आजकल 'बिहार' कहते हैं। जरासंधकी दो बेटियाँ कंससे ब्याही थीं। जब वे उसके यहाँ आकर रो-रोकर अपना दुखड़ा सुनाने लगीं कि 'कृष्णने कैसे हमारा सुहाग लूटा !' तो उसका लहू उबल उठा, मुँह तमतमा गया, आँखें लाल हो आयीं, नथने फड़कने लगे। उसने झल्लाहटमें अपने ओठ चबा लिये, बार बार हथेलीपर मुट्ठियाँ पटकने लगा : 'इन ग्वालोंका इतना साहस कि कंसपर हाथ उठायें ! चींटींके भी पंख जमने लगे ! मटियामेट न कर दिया, तो मेरा जरासंध नाम नहीं।'

उसने अपने बड़े-से, चौड़े गोल मुँहपर छायी गज्झिन मूँछोंपर तमतमाकर हाथ फेरा, मानो अभी सारी धरती उलट दे रहा हो।

जरासंध कोई ऐसा-वैसा राजा नहीं, जो कोई उसे छेड़कर जीता बचा रहे। जब वह अपनी भारी-भरकम कसरती देह लेकर लँगोट चढ़ाकर अखाड़ेमें उतरता, तो जान पड़ता 'कोई पहाड़ उतरा चला आ रहा है !' उसकी चौड़ी, उभरी छाती मानो पत्थरकी गढ़ी चट्टान हो और उठे हुए कंधे मदमस्त साँड़के उठे डिल्ल ! गोल-मटोल, मोटी-मोटी बाँहें ऐसी जंगी थीं जैसे किसीने लोहा साँचेमें ढाल गढ़ा हो। गदा चलानेमें वह ऐसा बेजोड़ था कि बड़े-बड़े गदाधारी उसका लोहा मानते। टर्रा ऐसा कि नाकपर मक्खी न बैठ पाये। जिससे एकबार ठन जाय, उसकी ईंटसे बजा दे। जिसपर उसकी भौंहें तन जायँ उसे चुटकीमें मसल धरे,

उसका कोई नामलेवा, पानी-देवा न बचा रह जाय। उसने न जाने कितने राजाओंको जीत उनका सारा राजपाट लूटा और उन्हें डंडा-बेडियाँ देकर कारागारमें बाँध रखा। वे वहाँ पड़े सड़ते हुए अपने कर्मोंकी झींक रहे थे।

इसी ऐंठमें वह अन्धा हुआ बैठा था कि 'ये ग्वाले क्या खाकर मुझसे लोहा लेंगे? फूँक दूँगा तो उड़ते दिखायी देंगे। मथुरा हथियाना तो मेरे बाँये हाथका खेल है। इन्होंने मले घर बायना दिया है। अब देखें, मेरे हाथसे कहाँ बचकर जाते हैं? कुत्ता भी अपने घर अपनेको नाहर ही समझता है। अभीतक किसी करेड़से पाला नहीं पड़ा, इसीलिए इतनी उछल-कूद मचाये हैं। अखाड़ेकी मिट्टी पोतकर पहलवान कहलानेका दम भरने चले हैं। इन कलके छोकरोंका यह ताव कि हम जैसे अखाड़ियोंसे आकर उलझें! सामने आये तो आटा-दालके भाव जान जायँ! जिसकी बिल्ली, उसीको म्याऊँ?'

जरासंध जो था सो था ही; उसके हाथी, घोड़े, रथ और पैदल-सेना इतनी बड़ी थी कि मानो उमड़ता हुआ समुद्र हो। जिधर घूम जाय; उधर हाहाकार मचे—बस्तियोंकी बस्तियाँ उजड़ जायँ; गाँवके गाँव मसान बन उठें; राखके ढेर बन जायँ। उसका नाम सुनते ही ऐसी भगदड़ मच जाती कि लोग बाल-बच्चों तकको फेंक फेंककर, रोते-बिलखते जान लेकर भाग खड़े होते। चारों ओर ढूँढ़नेपर भी कोई ऐसा माईका लाल दिखाई नहीं पड़ता जो जमकर उससे मोरचा ले सके, डटकर लोहा ले सके!

जरासन्धने झट अपनी सेना सजायी और मथुरापर धावा बोला दिया। अब तो मथुरामें हड़कम्प मच गया। सबके मुँहपर हवाइयाँ उड़ने लगीं। अब किसका खाना, किसका पीना? सब अपने-अपने देवी-देवता मनाने लगे। सबने समझ लिया कि मथुरा अब गयी, तब गयी!

जब कृष्णके कानमें भनक पड़ी कि मथुरावाले अभीसे जी छोटा किये कंधा डाले दे रहे हैं, तो वे घर घर घूमकर धीरज बँधाते फिरे: "यामें डरिबेकी का बात है। वो सेर तौ हम सवा सेर। याऊको मार नाथ भगायौ तौ वसुदेवकौ पूत नाय कहियौ।"

यों समझानेको तो कृष्ण समझाये जा रहे थे, पर बात लोगोंके गले नहीं उतर पा रही थी। सब यही समझ रहे थे कि ये सब आँसू पोंछनेवाली बातें हैं। जरासंधके आगे कोई क्या खाकर टिकेगा? 'बड़े-बड़े बह गये, गदहा पूछे कित्ता पानी!' मथुरावाले उसके आगे क्या ठहर पायेंगे?

सचमुच, उन दिनों जरासंधकी तूती बोलती थी। जिसने आँख मिलायी नहीं कि उसकी आँख निकाली नहीं। लाख कहनेपर भी कोई मान नहीं सकता था कि गदा चलानेमें बलराम भी उससे उन्नीस नहीं है। फिर जरासंध पचास पार किये बैठा था और कृष्ण-बलरामकी चढ़ती जवानी थी, उनकी नसेंतक भीगी नहीं थीं।

× × ×

वह दिन भी आ ही गया। अगले दिन सूरज निकलते ही कृष्ण और बलराम भी अपने सुनहरे रथोंपर चढ़े अपनी छोटी-सी सेना लेकर जरासंधके सामने आ डटे। कृष्णने आते ही अपना पांचजन्य शंख फूँका, तो वैरियोंके जी दहल गये।

शंखध्वनि सुनकर जरासंधने मूछोंपर ताव देते हुए कृष्णको ललकारा : "अच्छा, मेंडकीको भी जुकाम हुआ है? कलका छोकरा मुझसे क्या लोहा लेगा! फिर, जिसे अपने सगे मामाको पछाड़ मारनेमें लाज न आयी, उस हत्यारेसे लड़कर कौन अपनी नाक कटायेगा? हाँ, बलरामके मनमें लड़कर सरग चढ़नेकी साध हो तो आये, दो-दो हाथ हो जायँ।"

कृष्ण कब चूकनेवाले थे। उन्होंने फटकारा : "चलो, चलो। जो सूरमा होते हैं, वे अपने मुँह मियां मिट्ठू नहीं बना करते। अपनी झूठी बड़ाईके पुल नहीं बाँधा करते। गाल बजाना और डींग हाँकना तो कमीनोंका काम है। तुम जिस ऐंठमें फूले फिर रहे हो, वह तो हम पलभरमें ढीली कर छोड़ेंगे। सारी अकड़ किरकिरी कर देंगे। तुम्हारे सिरपर तो यों ही काल नाच रहा है, इसलिए तुम्हारी इस बहकको हम कोरी पागलकी बकझक ही समझते हैं।"

इतना सुनना था कि जरासंध आगबबूला हो गया। उसकी सारी सेना कृष्ण-बलरामपर टूट पड़ी। वह घमासान लड़ाई मची कि थोड़ी देरतक तो कृष्णका रथ, उनका झंडा और उनकी सेना, सब ऐसे आँखोंसे ओझल हुए कि ढूँढ़े न दिखाई पड़े।

पर कृष्णने झट अपना धनुष सँभाला। जैसे पाटा-बनेठीवाले दोनों ओर लूक जलाकर फुर्तीसे चकरी घुमाते हैं, वैसे ही कृष्णने थोड़ी ही देरमें ऐसा हड़कम्प मचाया कि मगधकी सारी सेनाको गाजर-मूलीकी भाँति काटकर फेंक दिया।

यह देखकर तो जरासंधकी त्यौरियाँ चढ़ गयीं। वह गदा सँभालकर बलरामके आगे आ कूदा। दोनोंमें से कोई किसीसे उन्नीस नहीं था। वह ठनाठन्न, धमाधम्म गदाएँ चलने लगीं कि उनकी ठोकरोंसे चमाचम चिनगारियाँ छूट चलीं। जब गदाएँ भी टूट-टूटकर जा गिरीं, तब दोनों मुक्का-मुक्की और गुत्थमगुत्थीपर उतर आये।

पर बलरामके आगे वह कितनी देर टिक सकता था? देखते-देखते बलराम उसे पटक-कर उसकी छातीपर चढ़ बैठे। कृष्णने न रोका होता, तो वे उसे ढेर ही कर डालते। कृष्णने कहा : 'जाने दो भय्या! छोड़ दो इसे। मच्छरको मारकर क्या हाथ रँगना?'

जरासंधको कृष्ण और बलरामके हाथों यों छूटना कसक गया। उसकी शानमें बट्टा लग गया। आज पहली बार उसे मुँहकी खानी पड़ी और वह भी लड़कोंके हाथ! वह लाजसे गड़ गया कि क्या मुँह लेकर मगध लौटूँगा। पर वह तो चिकना घड़ा था। पानी पड़ा और बह गया!

इधर कृष्ण और बलराम जब मगधकी सेनाके हाथी, रथ घोड़े, धनुष-बाण, तलवार, भाले समेटकर मथुरामें लौटे, तो सारी मथुरा उमंगसे उनकी झलक पानेके लिए उमड़ पड़ी।

चारों ओरसे उनपर फूलोंके गजरे, धानकी खीलें, दहीके छींटे बरस पड़े। सारी मथुरा नाच उठी। घर-घर घीके दिये जल उठे, घर-घर दीवाली जगमगा उठी।

सत्रह बार जरासंधने पूरी तैयारीके साथ मथुरा पर चढ़ाई की, पर सत्रहों बार उसे मुँहकी खाकर अपना सा मुँह लिये लौट जाना पड़ा।

कालयवन हरिभक्तकी नेत्राग्निमें स्वाहा !

अब उसने सोचा कि सीधी लड़ाईमें तो पार नहीं पा सकूँगा। हाँ, दोनों ओरसे मथुरापर धावा बोला जाय, तभी काम बन सकेगा। यह सोचकर उसने अपने साथी शाल्वके हाथों कालयवनको कहला भेजा कि पश्चिमसे तुम आओ, पूर्वसे मैं आता हूँ। बस, मथुराको घेर लिया जाय। फिर देखें, वे किधरसे निकल भागते हैं ?

कृष्णके कानमें यह भनक पड़ी, तो उनके कान खड़े हो गये। उन्होंने झट बलरामसे गुपचुप बातें करके समुद्रके तीरपर द्वारकापुरीका ऐसा पक्का गढ़ खड़ा करवा डाला कि उसमें कहींसे भी किसीकी पैठ न हो सके। रातो-रात उन्होंने सब अपने घरवालोंको वहाँ ले जा पहुँचाया और मथुरा लौट आये।

अभी वे लौटे ही थे कि सचमुच कालयवन अपनी बड़ी भारी सेना लिये-दिये आ ही तो धमका। अब कृष्णने दूसरी चाल चली कि साँप भी मर जाय और लाठी भी न टूटे। वे नंगे हाथ गलेमें कमलकी माला डाले छैला बने बड़े फाटकसे निकलकर पहाड़की ओर पैर बढ़ाये झपटकर बढ़ चले।

कालयवनने यह देखा, तो वह अपने हथियार छोड़कर ललकारता हुआ पीछे दौड़ चला : "अरे, ठहर तो सही, कहाँ भागा चला जा रहा है ?"

कृष्ण कहाँ सुननेवाले थे ? कालयवनको पीछे आते देखकर वे भाग खड़े हुए। आगे-आगे कृष्ण और पीछे-पीछे कालयवन !

दौड़ते-दौड़ते कृष्ण पहाड़की गुफामें जा घुसे। वहाँ मुचुकुन्द सोये पड़े खर्राटे भर रहे थे। कृष्णने झट अपना पीताम्बर जा ओढ़ाया और अपने भीतर दुबककर बैठ रहे।

कालयवनने भीतर आकर पीताम्बर देखकर समझा कि कृष्ण ही बहाना बनाकर यहाँ आ सोया है। उसने छूटते ही पैरकी जो ठोकर दी, तो हड़बड़ाकर मुचुकुन्दने उठकर आँखें खोल दीं। आँखोंका खुलना था कि उनमें से ऐसी लपटोंकी लपक निकली कि कालयवन वहीं खड़ा-खड़ा राखका ढेर हो गया !

यह देखते ही कालयवनकी सारी सेना सिरपर पाँव-रखकर तितर-बितर होकर भाग खड़ी हुई।

अब तो कृष्णकी और धाक जम गयी। पर वे लड़ाईसे भाग खड़े हुए थे, इसलिए उनका नाम तबसे 'रणछोड़' पड़ गया। नाम जो भी पड़े, पर काम तो उन्होंने लाख रुपयेका किया। 'हल्दी लगी न फिटकिरी, रंग चोखा।' बिना लड़े-भिड़े वैरीको जलाकर राख कर डाला।

नकली वासुदेव गृद्ध्राय स्वधा !

करूषका सिरफिरा राजा पौंड्रक भी कृष्णके पौरुषसे लोहा लेनेमें जरासन्धसे पीछे थोड़े ही था ! उसने कृष्णके पास हरकारा भेजकर कहलवाया कि 'वासुदेव बने फिरनेका बहुत ढोंग न रचो। वासुदेव कोई है तो अकेला मैं हूँ। मैं ही सबकी भलाईके लिए अवतार लेकर धरतीपर उतरा हूँ। तुम क्या झूठमूठ वासुदेवका स्वाँग बनाये फूले-फूले फिर रहे हो? अपनी भलाई चाहो तो चुपचाप आँख मूँदकर मेरे पाँव आ पकड़ो, मेरे आगे नाक रगड़ो। नहीं तो देखते-देखते तुम्हारी द्वारिकाके धुर्रे उड़ा दूँगा, भागते ठौर न मिलेगी। सारी हेकड़ी भूल जायगी।'

हरकारेके मुँहसे पौण्ड्रककी ये बहकी-बहकी बातें जो सुने, वही हँसते-हँसते लोटपोट हुआ जाय। सुननेवालोंके पेटमें बल पड़ जायँ। वे ठहाका मार खिलखिलाकर ऐसे हँस पड़े कि लाख रोकनेपर भी हँसी रोक न पाये।

जब हरकारा कह चुका, तो कृष्णने उससे 'किसी कनमैलिएसे अपने राजाके कानका खोंट निकलवाकर कान खुलवाकर कहा : 'जाकर उसे समझा देना कि तुम्हारी खोपड़ीमें गोबर भरा है। भलाई इसीमें है कि खोपड़ी खुलवाकर उसे झटपट ठीक करा लो। कहीं मैंने चक्र सँभाल लिया तो लेनेके देने पड़ जायँगे। धड़पर सिर न दिखाई देगा। जिन हाँजी हाँजी करनेवाले चापलूस कुत्तोंके चंगपर चढ़ानेसे तुम फूलकर कुप्पा हुए जा रहे हो और जिनके भरोसे तुम्हारे इतने पंख लग गये कि बहके बहके शान बघारे जा रहे हो, उन सबको भी ऐसी पटकनी दूँगा कि ढूँढ़े हड्डी-पसली न मिलेगी।''

उसके कुछ दिन ही बुरे आ चले थे। हरकारेकी बात सुनते ही वह पिनक उठा और अपनी टुटरूँ-टूँ सेना लिये द्वारिकापर चढ़ ही चला।

कृष्णने उसकी आन-बान देखी, तो उनकी हँसी रोके न रुकी। वह शंख, चक्र, गदा, तलवार, धनुष लिये, तनपर पीताम्बर फहराये, छातीपर श्रीवत्सकी छाप छापे, झूठा कौस्तुभ मणि लटकाये, रथकी झंडीपर गरुड़ लिखवाये विष्णुका-सा बाना बनाये खड़ा हुआ। ऐसा लग रहा था, मानो कोई भाड़-भँड़ैती करने आ खड़ा हुआ हो।

फिर तो कृष्णने उसकी ऐसी मरम्मत की कि वह और उसके साथी सब घड़ी भरमें गिद्ध और कौओंके चुगे बने धरतीपर बिछे दिखाई देने लगे।

बीस हजार राजाओंकी आहें जिसे खा गयीं !

इसी बीच एक दिन एक हरकारेने कृष्णसे हाथ जोड़कर आ सुनाया कि 'जिन राजाओंने जरासन्धका लोहा नहीं माना, उसके आगे मत्था नहीं टेका, उन बीस हजार आठ सौ राजाओंको वह बाँधकर अपने कारागारमें डाले हुए है। सबने आँखोंमें आँसू भरकर आपसे कहलवाया है कि अब आपका ही एक भरोसा है। आप इसके चंगुलसे छुड़ायें, तो छूटें। नहीं तो जनमभर यहीं पड़े सड़ते रहेंगे।'

उन्हीं दिनों राजा युधिष्ठिरके राजसूय-यज्ञका भी न्योता मिल चुका था। श्रीकृष्ण बड़े असमंजसमें पड़े कि पहले मगध जाया जाय या इन्द्रप्रस्थ ?

ऊधोजीने उनकी उलझन मिटा दी। उन्होंने कहा : 'राजसूय-यज्ञ करना कोई दाल-भातका कौर नहीं है। जबतक सब राजा लोग मिलकर युधिष्ठिरको अपना सिरमौर नहीं मान लेते तबतक राजसूय करनेका कोई तुक नहीं। अभी सबको जरासंध टंच हुआ वैठा है। पहले उससे निपट लो, तब दूसरी बात छेड़ो। वह कोई ऐसा-वैसा मरियलटट्टू नहीं कि जो आये वही दो सौंटे जमा जाय और वह चुपचाप खड़ा घास खाता रहे। उससे जूझना कोई हँसी-ठट्ठा नहीं। उसे पछाड़ सकनेवाला पट्ठा भीम ही है। वह ब्राह्मणका वेष बनाकर उसके पास जाय और आमने-सामनेकी लड़ाई माँग ले, तो काम बन जाय। वह ब्राह्मणोंको बहुत मानता है। उसकी मुट्ठियाँ भी इतनी खुली हैं कि जो आकर हाथ पसार दे, उसे नहीं करना तो वह जानता हो नहीं।

ऊधोकी बात सबको बावन तोले पाव रत्ती जम गयी। राजाओंके हरकारेसे कृष्णने उन्हें कहला भेजा कि 'घबराओ नहीं, तुम्हें छुड़ानेके लिए हम दो ही चार दिनोंमें पहुँचे जाते हैं।'

उसे भेजकर वे इन्द्रप्रस्थके लिए चल दिये। वहाँसे ब्राह्मणका बाना बनाये वे भीम और अर्जुनको साथ लिये जरासंधकी राजधानी गिरिव्रज जा पहुँचे और जरासंधको अपनी भीख जा सुनायी।

जरासंधकी आँखोंमें धूल झोकना कोई हँसी-ठट्ठा नहीं था। भीम और अर्जुनके हाथों-पर धनुषकी डोरीकी रगड़से पड़े घट्टे देखते ही वह ताड़ गया कि 'ये और जो भी कोई हों, ब्राह्मण नहीं हो सकते। पर हाथ पसारे वैठे हैं, इसलिए अपनी पौड़ीसे लौटाऊँगा नहीं।'

पूछनेपर कृष्णने सच-सच बता दिया कि 'यह अर्जुन है, यह भीम है और मैं इन दोनोंका ममेरा भाई कृष्ण हूँ। हम लोग अकेले-अकेले, आमने-सामनेकी लड़ाई माँगने आये हैं।'

सुनते ही जरासंध अपनी मूँछोंमें मुसकराता हुआ बोला : 'देखो कृष्ण ! तुम तो जनमके भगोड़े हो। मेरे ही डरसे तुम मथुरा छोड़कर समुद्रके परले पार जा पड़े हो। इसलिए तुम्हारे जैसे भगोड़ेसे लड़कर मैं अपनी नाक नहीं कटवा सकता। रहा अर्जुन ! कलका छोकरा, वह क्या जाने कि लड़ाई किस चिड़ियाका नाम है। हाँ, भीम कुछ कुछ मेरी जोटका हो सकता हैं। वह चाहे तो आकर हाथ मिला ले।'

भीमने हामी भर ली।

जरासन्धने एक बड़ी-सी लोहांगी गदा भीमको ला थमायी और दूसरी गदा अपने कन्धेपर तौले बाहर चौड़में निकल आया। अब तो दोनों ओरसे ऐसी ठनाठन्न बज चली कि गदाओंकी चोटोंसे चमाचम चिनगारियाँ छुटी पड़ रही थीं। जब लड़ते-लड़ते गदाएँ भी चूर-चूर हो चलीं, तब वे थप्पड़-घूँसोंपर उतर आये।

इन लोगोंकी लड़ाई भी निराली थी। दिनभर ये लोग मुक्कम-मुक्का करते थे। रातको सब एक साथ बैठकर खाते-पीते और गलचौर करते थे।

ऐसे लड़ते-भिड़ते पूरे सत्ताईस दिन निकल गये, पर कोई वारा-न्यारा नहीं हो पा रहा था। अट्ठाईसवें दिन भीमने कृष्णसे आ कहा : 'मेरे तो अस्थि-पंजर ढीले हुए जा रहे हैं। मैं इससे लड़कर पार नहीं पा रहा हूँ।'

कृष्णने उसकी पीठ ठोककर ढाढ़स बँधाया : 'क्या अपना जी छोटा किये डाल रहे हो ? कहीं ऐसे कन्धा डालनेसे काम चलता है ! अबकी बार लड़ने जाना, तो बीच-बीचमें कनखियोंसे मेरी ओर देखते रहना। जैसे मैं समझाऊँ, वैसे ही लड़ते जाना।'

अगले दिन दोनोंमें गुत्थमगुत्था चल ही रहा था कि कृष्णने एक टहनी बीचसे चीर दिखायी। यह देखना था कि भीमने जरासन्धका एक पैर अपने पैरसे दबाया और दूसरा पकड़कर उसे बीचसे चीर धरा।

अब तो उसके यहाँ रोना-पीटना मच गया। पर अब किसीके किये-धरे हो क्या सकता था। सब मन मारकर हाथ मलकर चुप हो बैठे, क्योंकि जरासन्ध आपने-सामनेकी लड़ाईके लिए बात जो हार चुका था।

छूटते ही कृष्णने उसके यहाँ बँधे पड़े बीस हजार आठ सौ राजाओंकी बेड़ियाँ कटवायीं और उन्हे नहलवा-धुलवाकर, नये-नये कपड़े-लत्ते पहनवा-ओढ़वाकर उन सबको अपने-अपने घर भिजवाया ! वहाँसे इन्द्रप्रस्थ लौटकर कृष्णने युधिष्ठिरसे जा कहा : 'अब ठाठसे आँख मूंदकर राजसूय-यज्ञका ठाट ठाटिये। अब कोई चीं-चपड़ करनेवाला नहीं बच रहा है, जो इसमें अड़ङ्गा डाल सके।

यों जरासन्ध भी खेत आया, जो इस काममें सबसे बड़ा रोड़ा बना बैठा था।

●

कर्मका त्याग संभव नही

जिसने देह-धारण किया है, वह सम्पूर्ण कर्मोंको तो कदापि नहीं छोड़ सकता। अतः कर्मोंका स्वरूपतः त्याग करके त्यागी होना असंभव है। जो कर्तव्य कर्मोंमें संलग्न रहकर भी उनके फलोंका त्याग करने-वाला है; वही त्यागी कहलाने योग्य है।

चरणोंमें है प्रणति समर्पित !

आचार्य श्री गङ्गाधर मिश्र

१,

रसनायक, रसमूर्ति सदा, नटराज कहाते जो भगवान्,
क्रूर पापियोंके वधमें, जागृत रहता जिनका अभिमान।
भक्तजनोंकी रक्षामें, अविचल है जिनकी टेक,
सेव्यरूपसे सेवक बनते, कितना सदय विवेक॥

२.

पाण्डव - गणके राजसूयमें, पग धोते थे आप,
महदाशय, परमोच्च शीलकी, इससे होती माप।
जरासंध, शिशुपाल, कंस थे, युगके वेधक पाप,
बुद्धि - चक्रसे, बलसे सारे, दूर किये सन्ताप॥

३.

इन्द्र - कोपसे व्याकुल था व्रज, जन-गण थे असहाय,
कर्म-कुशलता थी अपूर्व, सबके बन गये सहाय।
व्रज-बालाओंकी निश्छल, सेवाका पा सम्मान,
योगिवर्य ! हे कृष्ण ! आपने, किये समर्पित प्राण॥

४.

थी द्रौपदी अनाथ विलपती, करती हाहाकार,
बचा लिया सम्मान आपने, इतना कौन उदार !
कितना हृदय विशाल, सुदामा हुए आपके मित्र,
सुयश अनन्त आपके हैं, है अद्भुत पुण्य - चरित्र॥
चरणोंमें है प्रणति समर्पित, यह सुमनोज्ज्वल हार,
शरणागत-वत्सल भय - त्राता, करें इसे स्वीकार॥

●

भारतको एकसूत्रमें बाँधनेवाले राष्ट्रपुरुष

श्री दर्शनानन्द

★

योगिराज कृष्णके प्रादुर्भावके समय भारतीय राष्ट्रका राजसूत्र अधर्मी, निरंकुश एवं स्वार्थान्ध नरेशोंके हाथोंमें था। वे स्वेच्छाचारी एवं विलासी हो गये थे। सम्पूर्ण समाज विशृङ्खल हो चुका था। वर्णव्यवस्था शिथिल हो चुकी थी। सांसारिक कार्योंमें रत स्त्री, वैश्य एवं शूद्रको मोक्षका अधिकारी भी नहीं समझा जाता था। नैतिक दृष्टिसे भारत पतनके गर्तमें चला गया। अधर्म प्रवल हो गया था। फिर भी देश धार्मिक पुरुषोंसे विहीन नहीं था। धर्मपरायण पुरुष शेष रह गये थे, वे इतने उन्नत थे कि उनका एक पृथक् समाज ही वन गया था और वे सांसारिक कार्योंसे विरत एवं उदासीन हो गये थे। कोई ऐसा व्यक्ति दृष्टिगोचर नहीं होता था, जो अधर्मका प्रावल्य समाप्तकर धर्मकी प्रतिष्ठा कर सके। इसी हेतु भगवान् श्रीकृष्णका आविर्भाव हुआ :

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥

श्रीकृष्ण जिस समय अवतरित हुए, भौतिक दृष्टिसे देश उत्कर्षके शिखरपर अवश्य पहुँचा हुआ था, पर साथ ही नैतिक पतनकी भी परकाष्ठा हो चुकी थी। एक ओर हस्तिनापुरमें कौरव-पाण्डवोंका गृह-कलह था, तो दूसरी ओर कंसने अपने पिता महाराज उग्रसेनको बन्दी बना रखा था। जरासन्धके अत्याचारसे भी जनता त्रस्त थी। आसाम-नरेश नरकासुरने सोलह सहस्र सुन्दरियोंको अपने रङ्ग-महलमें ला रखा था। सम्पूर्ण राष्ट्र मिथ्याभिमानी, स्वार्थी एवं निरंकुश नरेशोंके देशद्रोही कार्योंसे पददलित एवं त्रस्त था। देश सहस्रों भागोंमें बँटा हुआ था। ये टुकड़े इतने छोटे थे कि मथुराके प्रतापी कहे जानेवाले कंसको पड़ोसके ही वृन्दावन, गोकुल, बरसाना आदि नगरोंमें कोई पूछतातक न था। यद्यपि प्राचीन गौरवके कारण सम्पूर्ण विश्व भारतका नेतृत्व स्वीकार करता था, पर उसे यह खटकता भी था। फलस्वरूप सभी विदेशी नरेश महाभारत-युद्धमें पाण्डवोंका नहीं, कौरव-पक्षका समर्थन कर रहे थे। यूरोपका बिडालाक्ष, अमेरिकाका बभ्रुवाहन, चीनका भगदत्त तथा ईरानका शल्य सभी दुर्योधनके पक्षधारी थे।

राष्ट्र-पुरुष द्वारकाधीश श्रीकृष्ण मातृभूमिके खण्ड एवं विग्रह तथा आपद्ग्रस्त स्वरूपको देखकर उद्विग्न एवं विचलित हो उठे। राष्ट्र खण्ड-खण्ड हो चुका था। प्रत्येक खण्डका राजा दूसरेको नीचा दिखाकर अपनी महत्त्वाकांक्षाकी पूर्ति चाहता था। इस हेतु वह विदेशियोंकी सहायता प्राप्त करनेमें भी नहीं हिचकता था। यहाँके धन-धान्य एवं प्राकृतिक सम्पदाओंसे पूर्ण सस्य-श्यामल प्रदेशोंको देखकर विदेशियोंके मुँहमें भी पानी आ रहा था। कृष्णने यह देखा तथा देशोद्धारके चिन्तनमें लगे। उन्होंने देशके छोटे-छोटे राज्योंको समाप्त कर विशाल अखण्ड भारतकी स्थापना कर देशके भविष्यको उज्ज्वल एवं गौरवशाली बनानेकी कल्पना की। अखण्ड भारतका राजसूत्र सञ्चालन करनेका उपयुक्त पात्र उन्होंने अर्जुनको समझा। उन्हें अर्जुनमें वे सभी गुण दृष्टिगोचर हुए, जो अखण्ड भारतके राजसूत्रके सफलतापूर्वक सञ्चालनके लिए आवश्यक थे।

भगवान् कृष्णने कुरुक्षेत्रके मैदानमें संसारभरकी सेनाओंके युद्ध-हेतु सन्नद्ध होनेके काफी पूर्व ही महाभारत रचानेकी तैयारी पूर्ण कर ली थी। अर्जुनको अखण्ड भारतका सूत्रधार निश्चित करनेके पश्चात् इस त्रिकालदर्शीने पाञ्चालदेशके साथ पाण्डवोंका सम्बन्ध स्थापित करानेका प्रयत्न किया, क्योंकि उक्त देशकी शक्ति तत्कालीन भारतमें द्वितीय श्रेणीकी थी। प्रथम श्रेणीकी शक्ति जरासन्धकी थी। स्वयं महाराज द्रुपद भी अपनी पुत्रीका विवाह अर्जुनसे करना चाहते थे। वे अर्जुनकी प्रतिभा एवं शक्तिका स्वयं रसास्वादन कर चुके थे, जब कि अर्जुनने उन्हें पराजित कर गुरु द्रोणाचार्यके सम्मुख प्रस्तुत किया था।

अखण्ड भारतकी परिकल्पना :

अर्जुनके साथ द्रौपदीका विवाह चुपचाप भी हो सकता था। किन्तु संसारको ज्ञात था कि पाण्डव लाक्षागृहमें भस्म हो चुके हैं। अतः विवाहके पूर्व अर्जुनको प्रकाशमें लाकर भारतके भावी सूत्रधारको जनताके सम्मुख प्रस्तुत करना आवश्यक था। इसी हेतु स्वयंवरकी ऐसी शर्त रखी गयी जिसे केवल अर्जुन ही पूर्ण कर सके। अर्जुनके समान कर्ण भी शक्ति रखता था। पर यह व्यवस्था कर ली गयी थी कि यदि अर्जुनकी अनुपस्थितिमें कर्ण प्रयास करे तो उसे रोक दिया जाय। अखण्ड भारतकी ओर यह था भगवान् कृष्णका पहला कदम!

भारतको एक तथा अखण्ड बनाने-हेतु ही भगवान् कृष्णने महाभारत रचानेकी कल्पना-की। वे अनुभव करते थे कि शान्तिके लिए भी क्रान्तिकी आवश्यकता होती है। यह कहना मिथ्या है कि महाभारतके युद्धका कारण दुर्योधन द्वारा पाण्डवोंका अधिकार छीन लेनामात्र था। उस युद्धका कारण दुर्योधन द्वारा पाण्डवोंका लाक्षागृहमें जलानेका प्रयास, धर्मराजको अन्याय द्वारा जुएमें हराना, द्रौपदीका चीर-हरण आदि भी नहीं था, वरन् युगपुरुष भगवान् कृष्णकी भारतको अखण्ड एवं जगद्गुरु बनानेकी इच्छा थी।

चारों आयुधोंका रहस्य :

पुराणकारों एवं शास्त्रकारोंने भगवान् कृष्णको विष्णुका अवतार कहा है। पूर्णावतारमें सत्, चित्, आनन्दका अर्थात् कर्म, ज्ञान और उपासनाका पूर्ण प्रकाश होता है। महाभारतमें

भगवान् कृष्णके कर्मका आदर्श परिलक्षित होता है। गीतामें उनके ज्ञानका पूर्ण आदर्श प्रकट होता है। पुराणोंमें उपासनाका आदर्श वर्णित हैं। वास्तवमें वे शंख, चक्र, गदा, पद्मधारी साक्षात् विष्णु ही थे। कौरवोंकी सभामें शान्तिदूतके रूपमें उनका भाषण एवं कुरुक्षेत्रके मैदानमें गीताका उपदेश उनका शंख है। महाभारतकी रचना उनका चक्र है। युद्धोपरान्त तुरत सारी परिस्थितिपर नियन्त्रण प्राप्त कर लेना उनकी गदा है। महान् विजयोंको प्राप्त करनेपर भी जलमें कमलके समान ऐश्वर्य, अधिकार एवं पदलिप्सासे निर्लिप्त रहना उनका पद्म है। उनके जितने भी नाम हैं, वे उनके विभिन्न गुणों एवं विशेषताओंसे परिचायक हैं। वे कृष्ण थे, क्योंकि उनका व्यक्तित्व आकर्षक था। वे राधावल्लभ एवं राधारमण थें, क्योंकि वे आत्माकी आह्लादिनी शक्ति राधाके प्रिय थे। वे गोपाल थे, क्योंकि वे देशके निःस्वार्थ सेवक थे एवं राष्ट्रकी समृद्धिके आधार गोवंशके रक्षक थे। वे अच्युत एवं माधव थे, क्योंकि वे अपने ध्येय एवं लक्ष्यसे विचलित नहीं होते थे।

वाल्यकालसे ही भगवान् कृष्णमें अनुपम एवं अलौकिक गुण परिलक्षित होने लगे थे। पन्द्रह वर्षकी ही अवस्थामें वे केवल बहत्तर दिनोंमें चारों वेद और वेदांगोंका अध्ययनकर उनके मर्मज्ञ बन गये। सोलह वर्षकी अवस्थामें ही अत्याचारी कंस-जैसे दुर्दमनीय शत्रुका विनाश कर डाला। जरासंध एवं शिशुपाल-जैसे पराक्रमी एवं शक्तिशाली राष्ट्रद्रोहियोंका अनायास वधकर उन्होंने जनताको राहत प्रदान की। केवल अठारह दिनोंमें महाभारतके युद्धमें पाण्डवोंको विजयश्री दिलाकर अखण्डभारतकी स्थापना कराना भगवान् कृष्णका ही काम था। केवल एक सप्ताहमें इन्द्रकी पराधीनतासे व्रजको मुक्त कराकर गोवर्धनकी गौरववृद्धि करानेका श्रेय उन्हींको है। कालिय नागका मान मर्दनकर उन्होंने व्रजभूमिको नागोंके भयसे मुक्त कर दिया। महाभारत कालमें कोंकण, मियाँवली, बन्नू, कोहाट आदिमें नागवंशियोंका विशेष प्रभाव था, पर भगवान् कृष्ण ही ऐसा व्यक्ति था, जिसने नागवंशियोंसे व्रजको बचाया।

कंस-दमनके पश्चात् कृष्णने सत्ता स्वयं हस्तगत नहीं की। प्रत्युत कंसके पिता महाराज उग्रसेनको ही वह राज्य सौंप दिया।

युगपुरुष कृष्णका इष्टदेव राष्ट्र ही था। राष्ट्र-गौरवके प्रश्नपर व्यक्तिगत मान-सम्मानका उनके लिए कोई प्रश्न ही नहीं था। वे देशको अखण्ड कर विदेशी प्रभावसे मुक्त रखना चाहते थे। कंसवधके पश्चात् जरासन्ध ही प्रधान शक्तिशाली राष्ट्रद्रोही था। वह सत्रहबार मथुरापर आक्रमण करके पराजित हो चुका था। इसबार उसने जयचन्दके समान कालयवन नामक विदेशी राजाकी सहायतासे आक्रमण करनेकी योजना बनायी। आशंका यह थी कि मुहम्मद गोरीके समान कालयवन भी कृष्ण-जरासन्ध युद्धका उपयोग करेगा। कृष्ण अपने निजी सम्मान-हेतु राष्ट्रको विदेशियोंके हाथोंमें समर्पित नहीं कर सकते थे; लेकिन इसबार जरासन्धसे सैनिक युद्ध न करनेका निश्चय किया। अतः वह मथुराको छोड़ द्वारकापुरीकी ओर रवाना हुए। कालयवनने उनका पीछा किया। कृष्ण तो पहलेसे ही तैयार थे। उन्होंने उसकी सेनाको घेरकर उसका संहार कर डाला।

राजसूय-यज्ञका पथ प्रशस्त :

कुछ समय पश्चात् धर्मराजने राजसूय-यज्ञ करनेकी अपनी इच्छा व्यक्त की। कृष्णने उन्हें बताया कि इस समय जरासन्ध ही सबसे प्रबल एवं प्रतापी राजा है। भगदत्त जैसे विदेशी राजा भी उसकी पराधीनता स्वीकार कर चुके थे। देशके अधिकांश राजा या तो उसके बन्दीगृहमें पड़े थे या भयभीत हो भाग गये थे। अतः सर्वप्रथम उसीकी शक्तिको समाप्त करना परमावश्यक था। किन्तु सैनिक-शक्ति द्वारा उसको पराजित करना कठिन था। नीतिबलसे भी उसको पराजित किया जा सकता था। इस हेतु भगवान्‌ने एक योजना बनायी। भीम एवं अर्जुनके साथ स्नातकोंका वेष धारणकर वे जरासंधसे मिले। उसने उन लोगोंको अतिथिशालामें ठहराया। कृष्णने उससे कहा कि मेरे दोनों साथी मौनव्रती हैं। अर्धरात्रिके समय वे मौनव्रत तोड़ेंगे। यदि आप चाहें तो उस समय इनसे बातचीत कर सकते हैं। अर्धरात्रिके समय जब जराजन्ध अतिथियोंके मध्य पहुँचा, तो भगवान् कृष्णने सबका परिचय देते हुए बताया कि ये लोग तुमसे युद्ध करने आये है, क्योंकि तुम क्षत्रियजातिका नाश कर रहे हो। फलस्वरूप उसने भीमसे मल्लयुद्ध स्वीकार कर लिया और वहीं उन्हींके द्वारा मारा गया। कृष्णने उसके स्थानपर उसके पुत्र सहदेवका राज्याभिषेक किया। जरासन्ध-वधसे भारतीय राजाओंमें प्रसन्नताकी लहर फैल गयी तथा राजसूय-यज्ञका पथ प्रशस्त हो गया।

जरासन्ध-वधसे कृष्णका बहुत बड़ा मनोरथ पूर्ण हुआ और अखण्ड एवं महान् भारतके निर्माणका बहुत बड़ा कण्टक दूर हुआ। इसके बाद श्रीकृष्णने पाण्डवों द्वारा दिग्विजय कराकर समस्त भारतको युधिष्ठिरके एकच्छत्र राज्यके अधीन किया और अखण्ड भारतकी नींव डाली। युधिष्ठिरके राजसूय-यज्ञमें जरासन्ध-गुटके राजा शिशुपालने श्रीकृष्णके अग्रपूजनका विरोध किया, पर भीष्मने उसके प्रतिवादका जोरदार खण्डन किया और राजसभाका कोई नरेश शिशुपालका साथ न दे सका। अब शिशुपाल गालियोंपर उतर आया और श्रीकृष्णके हाथसे मारा गया। उसके कुछ साथी दन्तवक्र, विदूरथ, शाल्व आदि भी श्रीकृष्णसे बदला लेने आये, किन्तु उनसे टकराकर चूर-चूर हो गये। विरोधी शक्तियाँ दुर्योधनसे साठ-गाँठ करने लगीं और द्यूतक्रीडाका आयोजन कर पाण्डवोंको राजवैभवसे वञ्चित करके उन्हें वनवास दे दिया गया। जबतक पाण्डव वनवासकी अवधि पूरी करके लौटे तबतक दुर्योधनने अपनी राजव्यवस्था सुदृढ़ कर ली और अपने मित्रों तथा सहायकोंकी संख्या बढ़ा ली। फिर तो पाण्डवोंको उनका राज्य लौटानेसे उसने इनकार कर दिया। यद्यपि विराटनगरमें अर्जुनके शौर्यसे समस्त कौरव पराजित हो गये थे; तथापि कर्णके बलका भरोसा करके दुर्योधन निश्चिन्त रहा और सुईकी नोक बराबर भी भूमि देनेको उद्यत न हुआ।

श्रीकृष्ण शान्तिदूत बनकर कौरव-सभामें गये और अपने प्रभावशाली भाषणसे उन्होंने सबको चमकृत कर दिया। साथ ही भविष्यमें क्या होनेवाला है, इसका स्पष्ट संकेत भी कर दिया। पाण्डवोंकी अवश्यम्भावी विजयका उद्‌घोष उन्होंने पहले ही कर दिया। वहाँ दुर्योधनने श्रीकृष्णको बन्दी बना लेनेका भी षड़यन्त्र किया, पर वह सफल न हो सका। श्रीकृष्ण अपनी

शौर्य और पराक्रमके अजस्र स्रोत

डॉ० छबिनाथ पाण्डेय

★

श्रीकृष्णका जीवन आद्यन्त शौर्य और ओजसे संदीप्त है, जिसका साक्षात्कार हमें पग-पगपर उनके जीवनकी अनेकानेक घटनाओं और व्यापारोंसे होता है। अवतारियोंमें श्रीकृष्ण ही एक ऐसे सक्षम अवतारी हैं, जिन्हें सौरगृहसे पूर्व गर्भमें आनेपर ही संकटोंकी अर्गलाने उनके पराक्रम शौर्य, धैर्य, दया, स्नेह, सौहार्द और शक्तिको चुनौती देकर उनसे जूझनेके लिए विवश कर दिया। वसुदेव और देवकीको अनेक ऐसी दानवीय यन्त्रणाओंमें डालकर क्रूर कंसने उनकी साँसतक पर पहरा बैठा दिया था। उनकी इस निरीहतापर करुणाने भी आठ-आठ आँसू बहाये, फिर भी कंसके कानपर जूँतक न रेंगी। वह अपने दानवी हठसे तिलभर भी न डिगा। देवर्षि नारदसे जब उसे यह ज्ञात हुआ कि देवकीसे उत्पन्न आठवीं सन्तान ही उसकी आयुका चर्वण कर उसे प्राणहीन कर देगी, तब तो उसके कान खड़े हुए, माथा ठनका और वह उस घड़ीसे ही इस उधेड़बुनमें पड़ गया कि कब देवकीको सन्तान हो और कब मैं उसके रक्तसे अपनी छाती ठंढी करूँ!

संयोगकी बात कि कंस और कृष्ण घनिष्ठ सम्बन्धी (मामा और भाँजे) होते हुए भी एक दूसरेके प्राण-हरणके लिए सचेष्ट और चिंतित रहे। कंसने भय और आतंकवश स्वजनों, आत्मीयों, मायावियों, क्रूरकर्मियों और हठधर्मियोंको बुलाकर मन्त्रणा की। उनसे अपने प्राणोंकी भीख माँगी; अनेक प्रलोभन दिये; साम, दाम, दण्ड, भेद द्वारा उसने कृष्णके प्राणहरणका दृढ़ संकल्प करवा लिया। अपने अनुचरोंको आदेश दिया कि कृष्णको जैसे भी हो, पकड़कर मार डालो। अनुचरोंने स्वामीका आदेश शिरोधार्य किया और चल पड़े कृष्णकी खोजमें।

पूतनाने अपने बनाव-ठनाव और साज-श्रृंगारसे अपनेको ऐसा सँवारा कि यशोदा भी न भाँप सकीं। वह गोदमें लेकर आँचलसे ढँककर विष-पुते स्तनोंको कृष्णके मुँहमें देकर दूध

अलौकिक शक्तिसे सबको पराभूत कर लौट गये। अन्तमें महाभारत-युद्ध हुआ। उसमें पाण्डवोंकी ओरसे राजनीतिका संचालन श्रीकृष्ण ही करते थे। श्रीकृष्णकी इच्छा पूर्ण हुई। दुर्योधन और उसके सहायक मारे गये और अखण्ड भारतपर युधिष्ठिरका धर्ममय साम्राज्य स्थापित हो गया। इस प्रकार राष्ट्रपुरुष श्रीकृष्णने समस्त देशको एकसूत्रमें बाँधनेका स्तुत्य और सफल प्रयास किया।

●

पिलाने लगी। यशोदाकी आँखें आश्चर्यसे खुलीकी खुली रह गयीं, जब उन्होंने देखा कि उनका लल्ला कन्हैया पहाड़-सी बड़ी राक्षसी पूतनाके शवपर बकैयाँ-बकैयाँ खेल रहा है। हुआ यह कि कृष्णने दूधके साथ ही पूतनाके प्राणोंका भी पान कर लिया। इसी प्रकार कंस द्वारा भेजे गये अनेक राक्षस, कोई साँड़के रूपमें हँकड़ता हुआ कृष्णके हाथों मरोड़ा गया, तो कोई अन्धड़में ही अपने प्राण दे बैठा। बहुतोंने तो दूरसे ही दाँतों तले उँगली दबा ली और कृष्णकी परछाहीं तकसे भय खाने लगे।

कंस द्वारा नियुक्त और निर्गमित अधिकांश अनुचरों, मायावियों और राक्षसोंका वध श्रीकृष्णने स्वयं अपनी रक्षाके लिए किया। श्रीकृष्णका शैशव-कालीन पराक्रम देवत्वसे इतना समुद्भूत और अनुप्राणित है कि वह मानवरूपमें किसीको भी उस सीमातक प्रभावित और विभावित नहीं कर पाता, जहाँतक कि उसे करना चाहिए। उसमें कहीं न कहींसे यह ध्वनि निरन्तर आती रहती है कि यह पराक्रम कोरा चामत्कारिक और अवतारी है, न कि मानवीय और साधारण।

श्रीकृष्णके शौर्यकी झाँकी हमें उनकी दानशीलता, धर्मवीरता, दयावीरता और विक्रमवीरताके रूपमें दिखाई पड़ती है। जो लोग केवल युद्धक्षेत्रमें ही वीरको क्रुद्ध हो शत्रुपर वज्रवत् प्रहार करते देखकर ही वीर, योद्धा, नाहर और समर्थ आदि नामोंसे सम्बोधित करते हैं, वे वीरताके गुह्यतम रहस्योंसे अपनेको दूर ही रखना चाहते हैं। यथार्थत: सच्चा वीर और पराक्रमी वही है, जो विकार उत्पन्न करनेवाली परिस्थितियोंमें भी टससे मस न हो, संयमसे न डिगे, निश्चयसे न हिले :

विकारहेतौ सति विक्रियन्ते येषां न चेतांसि त एव धीराः।

संकटापन्नको प्राण देकर, दुःखीके आँसू पोंछकर, धर्मकी रक्षाके लिए सिर देकर, सत्यके प्रति निष्ठा व्यक्त करके वैराग्यको सुखद भविष्यकी ओर प्रेरित करनेमें ही वीरताकी शोभा है। युधिष्ठिर, भीष्म पितामह, हरिश्चन्द्र, शिवि, दधीचि आदि त्यागियों द्वारा अपनायी गयी नीति ही पराक्रमकी विशुद्ध व्याख्या है।

योगिराज, नीतिज्ञ श्रीकृष्णने जहाँ एक ओर अपने पराक्रमका प्रदर्शन सव्यसाची अर्जुनके माध्यमसे कुरुक्षेत्रके प्रलयंकर दुर्दर्श युद्धमें किया, वहीं पूतना, शकटासुर, तृणावर्त, वत्सासुर, वकासुर, अघासुर, धेनुकासुर, प्रलंबासुरके वध और कालियनागके मदमर्दन, दावानलसे रक्षा, इन्द्रके कोपसे गोपों (गोवर्धन) की रक्षा, सुदर्शन, शंखचूड़, अरिष्टासुर, केशी, व्योमासुर आदि राक्षसोंका विनाश भी किया। धनुष-यज्ञके समय रजकका उद्धार, विपत्तिकी मारी कुब्जापर कृपा, कुवलयापीड हाथीका वध, रंगशालामें मुष्टिक, चाणूर आदि मल्लोंका वधकर उन्होंने देवकी, वसुदेव और उग्रसेनको कारासे मुक्त किया। श्रीकृष्णके प्रतापसे ही भीष्म पितामह, द्रोणाचार्य तथा कर्ण-जैसे योद्धाओंका वध हुआ। श्रीकृष्णके त्यागकी सफल झाँकी उस समय स्पष्ट मिलती है, जब युधिष्ठिर द्वारा प्रदत्त राज्यको कृष्णने वैसे ही ठुकरा दिया, जैसे उन्होंने उग्रसेन द्वारा प्रदत्त शूरसेन-देशका राज्य अस्वीकार कर दिया था।

रुक्मीद्वारा वलपूर्वक शिशुपालसे ब्याही जानेवाली रुक्मिणीकी इच्छाके अनुरूप शिशुपाल, द्विविद, शाल्व, दन्तवक्र, विदूरथ आदिका वध तथा रुक्मिणीसे विवाह कर कृष्णने अपनी वीरता और पराक्रमका उत्कट परिचय दिया। ऊषा-अनिरुद्धके विवाहमें बाधक बाणासुरका उद्धार कर कृष्णने युगलप्रेमियोंको चिर-सौख्य प्रदान किया। मुचुकुंदसे कालयवनको भस्म करवाकर जरासन्धको विना युद्धके ही लौटनेको विवश कर देना उन्हींका नीतियुक्त पराक्रम था। द्रौपदीपर कृष्णकी कृपाका कैसा करुणापूर्ण सशक्त पहरा था कि युधिष्ठिर, अर्जुन, भीम, नकुल, सहदेव आदिके नतमस्तक हो वैठनेपर भी द्रौपदीकी लजीली लाज लज्जालु ही वनी रही।

श्रीकृष्णने ठीक ही कहा था कि 'जव जव धर्मका ह्रास और अधर्मका विनास होगा, तब-तव साधुओंकी रक्षा, पापियोंके विनाश तथा धर्मकी स्थापनाके लिए मैं युग-युगमें अवतार लेता रहूँगा।' मोहाभिभूत अर्जुनको दिया गया कृष्णका यह वचन कितना ज्योतिर्मय और पराक्रमपूर्ण है कि 'संसारमें जितने भी लोग विभूतिमान्, श्रीयुक्त और ऊर्जस्वी दिखायी पड़ते हैं, उन सवको मेरे ही तेजके अंशसे उत्पन्न समझो':

यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा। तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसम्भवम्॥

शोकाकुल अर्जुनको एक स्थानपर समझाते हुए श्रीकृष्ण कहते हैं कि 'तुम उन लोगोंके लिए शोक कर रहे हो, जिनके लिए शोक नहीं करना चाहिए। बातें तो तुम ऐसी करते हो, मानो वड़े भारी पण्डित हो, किन्तु इतनातक नहीं जानते कि पण्डित लोग मृतों और मरणशीलोंके लिए कभी चिन्ता नहीं किया करते:'

अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे।
गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः॥

निम्नलिखित कथनमें श्रीकृष्णकी इस दृढ़ताका दर्शन होता है कि वे अपने कार्यके प्रति कितने सचेष्ट, सजग और निष्ठावान् हैं:

चलेद्धि हिमवाञ्छैलो मेदिनी शतधा भवेत्।
द्यौः पतेत सनक्षत्रा न मे मोघं वचो भवेत्॥

अर्थात् चाहे हिमालयपर्वत चलने लगे, पृथ्वी सौ टूक हो जाय, आकाश नक्षत्रोंके साथ पृथ्वीपर आ टूटे; किन्तु मेरा वचन कभी निष्फल नहीं हो सकता। इन्हीं पराक्रमयुक्त, वीरताभरे, पुंस्त्वपूर्ण वचनों, कार्यों और संकल्पोंके कारण ही यह कहा गया है:

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम॥

'जहाँ योगेश्वर कृष्ण हैं और जहाँ धनुर्धर अर्जुन हैं वहीं लक्ष्मी, विजय, ऐश्वर्य और ध्रुव नीति सव कुछ रहता है।

धर्मके प्रति कहे गये कृष्णके इस वचनमें मानवमात्रके लिए कितनी संजीवनी शक्ति

भरी हुई है कि कामसे, क्रोधसे, द्वेषसे, धनके कारण, लोभसे, कलहके कारण या अन्य किसी प्रलोभनसे धर्मको कभी नहीं छोड़ना चाहिए :

न जातु कामान्न भयान्न लोभाद्धर्मं त्यजेज्जीवितस्यापि हेतोः।

श्रीकृष्णके पराक्रमके सम्बन्धमें महामना मालवीयजीका यह कथन कितना दीप्तिपूर्ण है :

सत्यव्रतौ महात्मानौ भीष्मव्यासौ सुविश्रुतौ।
उभाभ्यां पूजितः कृष्णः साक्षाद्विष्णुरिति ह्यलम् ॥
माहात्म्यं वासुदेवस्य हरेरद्भुतकर्मणः।
तमेव शरणं गच्छ यदि श्रेयोऽभिवाञ्छसि ॥

जिन भगवान् कृष्णने अपने प्रकट होनेके समयसे अन्तर्धान होनेके समयतक साधुओंकी रक्षा, दुष्टोंका दमन, न्याय और धर्मकी स्थापना आदि अनेक अद्‌भुत कर्म किये, उनका माहात्म्य केवल इसी बातसे भलीभाँति विदित है कि भगवान् श्रीकृष्णके समकालीन और उनके गुणोंसे भलीभाँति परिचित महाभारतके रचयिता श्री वेदव्यास और सत्यव्रती भीष्म पितामह दोनों ही महात्माओंने भगवान् कृष्णको साक्षात् विष्णु मानकर पूजा है। इसलिए जो अपना मंगल चाहते हैं, उन्हें चाहिए कि भगवान् कृष्णकी शरण जायँ।

श्रीकृष्णका पराक्रम कितना अद्भुत और धैर्यपूर्ण तथा चकित कर देनेवाला है, इसका एक नन्हा-सा दृष्टान्त दे देना अत्यन्त समीचीन होगा :

अनन्ततेजा गोविन्दः शत्रुपूगेषु निर्व्यथः।
सनातनोऽस्ति पुरुषः यतः कृष्णस्ततो जयः ॥

कृष्णके तेजका पारापार नहीं। कितने ही शत्रुओंसे घिरे होनेपर भी उनके चित्तमें कभी घबराहट नहीं होती। वे सनातन पुरुष परमात्माके रूप हैं। जहाँ कृष्ण हैं, वहीं विजय निश्चित है।

उपर्युक्त साक्ष्योंके आधारपर श्रीकृष्णकी कर्मठता, पटुता, एकाग्रता, निष्ठा, संयम, दृढ़ निश्चय, धैर्य, और औदार्यको दृष्टिमें रखते हुए, उन्हें यह कहना कि वे पराक्रम-पुंज और तेजस्वी पौरुष हैं, अत्यन्त उपयुक्त है :

वासुदेवः परब्रह्म कल्याणगुणसंयुतः।
भुवनानामुपादानं कर्ता जीवनियामकः ॥

परब्रह्म वासुदेवमें कल्याण करनेवाले अनेक गुण भरे हुए हैं। वे ही चौदहों भुवनोंके बनानेवाले, चौदहों भुवनोंके उपादान और सब जीवोंमें रहकर उनका नियमन या शासन करनेवाले हैं।

यतो कृष्णस्ततो धर्मो यतो धर्मस्ततो जयः।

जहाँ कृष्ण हैं वहीं धर्म है, जहाँ धर्म है वहीं विजय है।

●

गिरिधारीका पुरुषार्थ

श्री श्रीप्रसाद

★

(मंचपर प्रातःकालका दृश्य। क्रमशः सूरजका प्रकाश, चिड़ियोंकी मधुर ध्वनि आदि।)

वाचक : फूल खिले कलियाँ मुसकायीं नममें सूरज आया।
जाग गयी धरती, जागे जन, नवजीवन फिर छाया॥
गाने लगे पखेरू उड़-उड़ मीठे-मीठे गाने।
हलचल आयी, लोग लगे घर बाहर आने जाने॥
ग्वालिन चलीं दही लेकरके दूध ले चले ग्वाले।
थाल सजाकर चले इन्द्रकी पूजा करनेवाले॥

(मंचपर दो तीन ग्वालिनें दहीं लेकर जाती है। दूसरी ओरसे दो-तीन ग्वाले दूध लेकर आते और चले जाते हैं। दो-तीन स्त्री-पुरुष थाल सजाये जा रहे हैं।)

कृष्ण (यशोदासे) :

व्रजवासी जाते कहाँ ले लेकर उपहार।
पकवानोंसे थाल भर साज-साज शृंगार।

यशोदा :

ये इन्द्रदेवकी पूजा करने जाते हैं।
सब आज इसी पूजाकी खुशी मनाते हैं॥
चलना तू मेरे साथ मुझे भी जाना है।
मुझको भी इन्द्रदेवका आशिष पाना है॥
देखना, लोग कितने खुश होकर आयेंगे।
पकवान, मिठाई, कितनी भेंट चढ़ायेंगे॥

कृष्ण :

क्यों इन्द्रदेवकी पूजा करते हैं।
क्या व्रजवासी सब उनसे डरते हैं।

यशोदा :

तू पूछ रहा है बार-बार, मैं तो रे तुझसे गयी हार!
(कुछ गोपोंके साथ नन्दका प्रवेश होता है।)

ले पूछ नन्दबाबासे अब । वे तुझको बतला देंगे सब ॥

कृष्ण (नन्दसे) :

कहाँ चले सब ले चन्दन फूलोंकी थाली ।
किस पूजामें जाते गोप, गोपियाँ आली ॥
कौन इन्द्र हैं ये व्रजके, सब जिसे मनाते ।
जिसकी पूजा करनेको व्रजवासी जाते ॥

नन्द :

वे हैं राजा इन्द्र हमारे स्वामी बादलके ।
जिनके कहनेपर चलते हैं बादल दल-जलके ॥
इन्द्रराजके कारण धरती पाती है पानी ।
फसलें आतीं, भूमि बनातीं हरी-हरी धानी ॥
आसमानमें अगर न आये श्याम घटा प्यारी ।
पानी बरसे नहीं, दुखी हो यह धरती सारी ॥

कृष्ण :

नहीं, झूठ है, इन्द्र न करते कोई ऐसा काम ।
जाने क्यों फिर फैल गया है व्रजमें उनका नाम ॥
हम लोगोंके स्वामी हैं बस गोवर्धन गिरिराज ।
इन्द्र नहीं, गोवर्धन करते हम लोगोंके काज ॥

नन्द :

चुप, चुप, ऐसी बात न कहना तू है बड़ा अबोध ।
इन्द्रदेव यदि जान गये तो कर बैठेंगे क्रोध ॥
आफतमें हम पड़ जायेंगे हे स्वामी सुरराज ।
इस अबोधकी बातें सुनकर मत होना नाराज ॥

कृष्ण :

अबसे कोई नहीं करेगा इन्द्रदेवकी पूजा ।
गोवर्धनके सिवा नहीं हैं व्रजका स्वामी दूजा ॥
सब पूजा पकवान मिठाई गोवर्धनको भेंटो ।
गोवर्धन सब कुछ देते हैं मनकी चिन्ता मेटो ॥
व्रजमें जितनी सुखसम्पति है गोवर्धनसे पायी ।
इन्द्रदेवने धोखा देकर अपनी धाक जमायी ॥
इन्द्र नहीं कुछ कर सकते हैं यदि हम दृढ़ हो जायें ।
गोवर्धनकी पूजाका यदि हम त्यौहार मनायें ॥

नन्द :

सुनो, सुनो, क्या कृष्ण कह रहा मानो इसकी बात।
गोवर्धनके चरणोंमें हम सौंपें सब सौगात ॥
उनको ही हम स्वामी मानें करें उन्हींका मान।

सभी गोप :

हाँ, हाँ, वहीं ले चलें अपने फूल और पकवान ॥

दृश्य : २

(दृश्य परिवर्तन। इन्द्रका दरबार। अपनी पूजाकी उपेक्षासे इन्द्र आवेशमें है।)

इन्द्र :

मेरा जो अपमान हुआ है लूँगा मैं प्रतिशोध।
पागल व्रजवासी कर बैठे मेरा आज विरोध ॥
श्रीकृष्णने बहकाया है देखें वे परिणाम।
क्या मुझको समझा है रोका जो पूजाका काम ॥

(मंचपर अन्य दरबारियोंके साथ बादल, बिजली और वज्र पात्र विशेष वेशभूषामें उपस्थित हैं।)

अरे बादलो, चलो, करो व्रजमें वर्षा घनघोर।
बह जाये व्रज, पानी ही पानी हो चारों ओर ॥
गिरो वज्र, कड़कड़कड़ चमको अरे बिजलियो, आज।
व्रजवासी रो रोकर देखें, मैं भी हूँ सुरराज ॥

(मंचपर अंधेरा। बादलोंकी गड़गड़। बिजलीका कड़कना और लोगोंका चीख-पुकार मचाते हुए इधर-उधर भागना।)

व्रजवासी :

रक्षा करो हमारी अब तो सारा गोकुल डूबा।
इन्द्रदेवने आज किया है ऐसा ही मनसूबा ॥
व्रजवासी बेमौत मरेंगे अब दो उन्हें सहारा।
जैसे भी हो, आज बचा लो अपना यह व्रज प्यारा ॥

एक ग्वाल : बचाओ ! बचाओ ! गायें हटा लो ! पानी बढ़ रहा है। अरे, अब तो व्रज डूब जायेगा। बचाओ !

दूसरा ग्वाल : इन्द्रको अप्रसन्न करनेका यही फल है। अब तो कृष्ण ही बचा सकते हैं।

नन्द : कृष्ण ! आओ। तुम कहाँ हो ? हमारी रक्षा करो !

कृष्ण : (आते हुए) : मैं आ गया। घबड़ाओ मत। मैं सबकी रक्षा करूँगा।

गोवर्धनके नीचे गोकुलवासी आओ।
गोवर्धनके नीचे अपनी गौए लाओ॥
रोओ मत, कुछ करो न चिन्ता कहना मानो।
इन्द्र नहीं कुछ कर सकते हैं, निश्चय जानो॥

(मंचपर फिर घोर अन्धकार और बादलका गरजना, बिजलीका चमकना आदि। फिर धीरे-धीरे प्रकाश और कृष्णका गोवर्धन पर्वत उठाये हुए दिखायी देना तथा नीचे ग्वाल-बाल और गायें एकत्र होते जाते हैं।

इसी समय इन्द्रका प्रवेश जो कृष्णसे क्षमा माँगनेके लिए आता है! अब बादल, बिजली कुछ नहीं है। वातावरण शान्त है।)

इन्द्र :

भूला था मैं अपने मदमें वनकर अज्ञानी।
शरण आपकी आया हूँ, हे दयादृष्टि दानी॥
आप देव है, व्रजके स्वामी अव मैंने जाना।
गोकुलके जन-जनके रक्षक मैंने पहचाना॥
मैं अभिमानी वना, आपको—नहीं जान पाया।
क्षमा करें, मैं दुखी हृदयसे चरणोंमें आया॥

(इन्द्र कृष्णके चरणोंपर गिरता है और कृष्ण उसे गले लगाते हैं।)

(परदा)

●

जिज्ञासा

पार नही पाते, गुण वेद औ पुराण गाते—
उनके वताये गीत, कहाँतक गाऊँ मैं।
आँख-कान-नाक-मुख, कुछका पता ही नहीं—
फिर ऐसे देवताको, कैसे ढूंढ़ पाऊँ मैं॥
लोग कहते हैं नाना नाम और रूप भी हैं—
किसकी, चरणकी शरण, कहाँ जाऊँ मैं।
कहे 'कविपुष्कर' वड़ा ही कार्य दुष्कर है—
मन-इन्द्रियोंके परे, उसे कैसे ध्याऊँ मैं॥

—'कवि-पुष्कर'

बाल-कृष्णके पौरुष

★

कहा जाता है : 'होनहार बिरवानके होत चीकने पात !' भगवान् श्रीकृष्णके पौरुषावतारके आसार उनके बालरूपमें ही एक नहीं, अनेक बार दीख पड़े। व्रजकी विपदाएँ मिटाने और कंसका कोप काटनेमें बालकृष्णने जो-जो अलौकिक लीलाएँ कर दिखायीं, उनमें शकटासुर-वध, यमलार्जुन-उद्धार, केशीका निपूदन बड़ी ही रोचक घटना होनेके साथ इस जगल्लीलानायकके अदम्य भावी पौरुषके जीते-जागते निदर्शन है।

१. शकट चूर-चूर !

— १ —

कंसने 'काकासुर'को आज्ञा देकर नन्दनन्दनके प्राणोंका अपहरण करनेके लिए भेजा। वह गोकुलमें जा पहुँचा। कागरूपमें उड़ता हुआ वह नन्दरायके आँगनमें उतरा। शिशु कृष्णको उसने देखा और शिशुने उस काले कौवेको। दूसरे ही क्षण वह कौवा लोहपिण्ड-सा शिशुकी मुट्ठीमें आवद्ध दिखायी देने लगा। श्रीकृष्णने एक अद्भुत लीला कर दिखायी :

कंठ चापि बहु बार फिरायौ गहि पटक्यौ नृप पास परयौ।

उसका गला दबाकर उसे कई बार घुमाया, फिर पटक दिया। आश्चर्य ! संज्ञाशून्य-सा वह काकासुर कंसके सभामण्डपमें ठीक कंसके सामने जा गिरा। एक पहरतक अथक उपचार हुआ, फिर कहीं उसमें बोलनेकी शक्ति आयी। उसने कहा :

सुनहु कंस तव आइ सरयो !
धरि अवतार महाबल काऊ एक हि कर मेरो गर्व हरयो।
सूरदास प्रभु कंस-निकंदन भगतहेतु अवतार धरयो॥

काकासुरकी यह बात सुनकर बलमदान्ध उत्कच अट्टहास कर उठा। वह काकासुरको अत्यन्त भीरु निर्बल मानकर कंसके समक्ष अपनी शक्तिका प्रदर्शन कर रहा था।

उत्कचको हँसते देखकर कंसके आतङ्कभरे म्लान मुखपर आशाकी एक किरण चमक उठी। समस्त सभासदोंको लक्ष्य करते हुए वह बोला :

ब्रज भीतर उपज्यौ मेरो रिपु मैं जानी यह बात।
दिन ही दिन वह बढ़त जात है, मो को करिहै घात॥
दनुज सुता पूतना पठाई, छिन कहि मांझ सँहारी।
ग्रीव मरोरि दियो कागासुर मेरें ढिग फटकारी॥
× × × ×
ऐसो कौन मारिहै ताको मोहि कहै सो आइ।
वाकौ मारि अपुनपौ राखै, सूर ब्रजहिं सो जाइ॥

प्रज्वलित अग्निमें मानो घृताहुति पड़ गयी। कंसके वचनसे उत्कचका गर्व प्रदीप्त हो उठा। अन्य राक्षस-सेनापतियोंके मुखसे हुंकारकी बयार बह चली। गर्वकी लहर बिखेरते उत्कच अपने स्थानसे उठा और कंसके सामने हाथ जोड़कर बोला :

………………………………प्रभु आयसु मैं पाऊँ।
ह्यां ते जाइ तुरत ही मारौं, कहो तो जीवत ल्याऊँ॥

कंसके हर्षकी सीमा न रही। वह आसनसे उठ खड़ा हुआ तथा उत्कचकी भूरि-भूरि प्रशंसा कर उसने व्रजेन्द्रनन्दनके प्राणहरणका बीड़ा देकर उसे विदा किया। दैत्य उसी क्षण व्रजपुरकी ओर चल पड़ा।

— २ —

यह उत्कच हिरण्याक्ष दैत्यका पुत्र था। चाक्षुष मन्वन्तरसे पहले की बात है, एक दिन उत्कच मुनिवर लोमशके आश्रममें जा पहुँचा। उनके तपोवनकी शोभा इस असुरके लिए असह्य हो उठी। अपने प्रकाण्ड स्थूलशरीरके घर्षणसे उसने आश्रमकी अगणित वृक्ष-पङ्क्तियोंको चूर्ण-विचूर्ण कर डाला। मूक वृक्षोंपर यह अत्याचार कोमलहृदय मुनि कब-तक देखते रहते? अन्तर्यामीकी प्रेरणासे वे बोल उठे : **विदेहो भव दुर्मते!** ‘नीच, इस देहसे रहित हो जा।’

वाक्य समाप्त होते-न-होते उत्कचकी वह काया सर्पकञ्चुककी भाँति झड़कर गिर पड़ी। समस्त बल विलुप्त हो गया। अब उसने मुनिवरकी महिमा जानी। फिर तो चरण-प्रान्तमें पड़कर वह कृपाकी याचना करने लगा। अनुनय-विनय करते हुए पुनः देहदानकी भीख माँगने लगा। त्रिगुणोंसे पार पहुँचे हुए मुनिके प्रसन्न होते देर ही क्या थी? वे तो पहले भी प्रसन्न ही थे। शापदान-लीलाके अन्तरालमें छिपी तो थी मुनिकी अनुकम्पा, दैत्यके उद्धारकी सुन्दर योजना! मुनिने कहा : ‘जाओ चाक्षुष-मन्वन्तरमें तुम्हें वायुका शरीर प्राप्त होगा तथा वैवस्वत-मन्वन्तरमें भगवच्चरणारविन्दका स्पर्श पाकर तुम त्रिगुण-पाशसे सदाके लिए मुक्त हो जाओगे।’

कालके प्रवाहमें बहते हुए उत्कचको आज इस घटनाकी स्मृति नहीं है। परन्तु भगवान्‌की लीला-शक्तिको तो सब कुछ स्मरण है। इसी लीलाशक्तिके नियन्त्रणमें अनादिकालसे

सब कुछ यथासमय नियमित रूपसे होता आया है एवं अनन्तकालतक होता रहेगा। इसीके नियन्त्रणमें कंस एवं उत्कचको मित्रता हुई और इसीके द्वारा आज अवतीर्ण स्वयं भगवान् व्रजेन्द्रनन्दनसे उसे मिलानेका उपक्रम हो रहा है।

— ३ —

व्रजराजके घरपर शिशुके पार्श्वपरिवर्तन (करवट लेने) का उत्सव था। नन्दद्वारपर शङ्खध्वनि होने लगी। भेरी, वेणु, वीणा, मृदङ्ग बज उठे। मङ्गलगान करती हुई व्रजाङ्गनाएँ नन्द-प्रासादमें एकत्र होने लगीं। धान्य, दूर्वा, हरिद्रा, चन्दन आदि माङ्गलिक द्रव्य हाथोंमें लिये गोपोंका दल उमड़ पड़ा। वेदज्ञ ब्राह्मण भी आ पहुँचे। व्रजेन्द्रने उन ब्राह्मणोंका चरण-प्रक्षालन किया। काञ्चन-पात्रोंमें प्रचुर अन्नराशि, सुन्दर-सुन्दर वस्त्र, बहुमूल्य रत्नाभूषण, मणि-मालाएँ एवं प्रत्येक ब्राह्मणकी रुचिके अनुरूप अगणित गोदान अर्पण करते हुए उनका पूजन किया। सन्तुष्ट ब्राह्मण कलश-स्थापन आदि करके यथाविधि देव-पूजन और हवनमें प्रवृत्त हुए।

नन्दप्राङ्गणके एक भागमें एक अत्यन्त बृहदाकार शकट है। उसके नीचे शकटस्तम्भोंसे सम्बद्ध एक अतिशय सुन्दर दोलिका-मञ्च (पालना) टँगा है। उसके पाये प्रवालनिर्मित हैं; पट्टियाँ मरकतमणिकी बनी हैं। उसमें लाल रेशमके फीते हैं, रुई भरी तोषक है; चारों ओर रुईभरे तकिये हैं। इसी पालनेपर माता यशोदा धीरेसे अपने लालाको सुला देती हैं।

अचिन्त्य लीलाशक्तिने पट-परिवर्तन किया। यशोदानन्दनकी निद्रा भङ्ग हुई और दैत्य उत्कच वहाँ आ पहुँचा। सबसे अलक्षित वायुकी लहरके समान वह नन्दप्राङ्गणमें प्रवेश करता और शकटके नीचे किलकते हुए, अंगुष्ठरसपानमें संलग्न नन्दललाको देखने लग जाता है। पूतनाकी गतिका स्मरण हो आनेसे अतः वह किसी अन्य आसुरो मायाका विस्तार न कर चुपचाप अलक्षित भावसे शकटमें ही आविष्ट हो जाता है। निश्चय करता है : 'अपने विशाल शरीरके भारसे धीरे-धीरे शकटको दबा दूँगा। भारसे दबकर शकटके पहिये धरातलमें धँस जायँगे और शकटका पृष्ठदेश बालकको पीसता भूमिसे जा लगेगा।'

उत्कचको पता नहीं था कि इसी बालकके एक क्षुद्र संकल्पसे अनन्त ब्रह्माण्ड एक क्षणमें पिस जाते हैं। ऐसे बालकको पीस डालनेका दुस्साहस कितना हास्यास्पद है!

व्रजेन्द्र-नन्दनको एकाकी किलकते और खेलते हुए बहुत समय हो चुका है। अब वे क्षुधार्त हो गये हैं। उन्हें स्तन्यपानके लिए अतिशय त्वरा है, पर माता निकट नहीं है। वे रो रहे हैं, किन्तु माता सुन नहीं पातीं। वे गृहागत अतिथियोंके सत्कारमें जो जुटी हैं।

उत्कचने अब शीघ्रता की; क्योंकि शिशुका क्रन्दन सुनकर जननी तथा नन्द आदि गोप कहीं आ न जायँ। वह तुरन्त शकटपर अपना महान् भार डालना आरम्भ करता है। 'चरमर-चरमर' शब्द करता हुआ शकट कम्पित होने लगता है। इसी समय योगमाया पैर फेंकते हुए

व्रजेन्द्रनन्दनके एक पैरका शकटसे स्पर्श करा देती है। नन्दनन्दन चरण उछालते हैं और वे शकटसे जा लगते हैं। यह बात वहाँ खेलते हुए शिशुओंने स्पष्ट देखी।

नन्दनन्दनके नन्हें-से चरण लगते ही शकट अकस्मात् आकाशमें उछलता है और अत्यन्त घोर शब्द करता हुआ उलटकर यशोदानन्दनसे कुछ ही दूरपर जा गिरता है। शकटपर दही, दूध, नवनीत आदिसे भरे अनेक बड़े-बड़े कांस्यपात्र रखे थे, वे सभी चूर्ण-विचूर्ण हो जाते हैं। और तो क्या, शकटके पहिये निकलकर दूर जा गिरते, धुरी अलग हो पड़ती और जुआ टूट-टूटकर खण्ड-खण्ड हो जाता है :

अधः शयानस्य शिशोरनोऽल्पक प्रवालमृद्वङ्घ्रिहतं व्यवर्तत।
विध्वस्त - नानारस-कुप्यभाजनं व्यत्यस्तचक्राक्षविभिन्नकूबरम् ॥

(श्रीमद्भागवत १०.७.७)

नन्द, उपनन्द और गोपमण्डली दौड़ पड़ी। सब 'हाय! हाय! नारायण! नारायण! त्राहि त्राहि प्रभो!' का आर्तनाद करने लगे। सर्वप्रथम व्रजेन्द्र पहुँचे। लपककर पुत्रको उठा लिया। व्रजेश्वरी तो शकट उलटनेकी बात सुनते ही अचेत हो गयी थीं। नीलमणि सकुशल है; यह समाचार कानोंमें पड़नेपर कहीं उनमें चेतनाका संचार हुआ।
उत्कचका क्या हुआ ? देखिये :

चूर्णं गतेऽथ शकटे पतिते च दैत्ये
त्यक्त्वा प्रभञ्जनतनुं विमलो बभूव।
नत्वा हरिं शतहयेन रथेन युक्तो
गोलोकधाम निजलोकमलं जगाम ॥

(गर्गसंहिता, गोलोकखण्ड)

'शकट गिर पड़ा। उसकी चोटसे उत्कट चूर्ण-विचूर्ण हो गया। वायुदेह छोड़ वह सर्वथा निर्मल हो गया। दिव्यदेहसे बालक्रीड़ासक्त गोलोकविहारी श्रीहरिको उसने प्रणाम किया। प्रणाम कर दिव्यातिदिव्य, चिदानन्दमय, शतअश्वसंयुक्त विमानपर आरूढ हो वह व्रजेन्द्रनन्दनके निजलोक गोलोकधामको चला गया।

शकटासुर (उत्कच) को ऐसी परम गति देकर भी व्रजेन्द्रनन्दन तो उस समय भी बाललीला-माधुरीका रस लेते हुए पैर पटक-पटककर रो रहे थे। यह देखकर देवगण विमुग्ध हो गये। उस दिन फिर व्रजेश्वरीने अपने नीलमणिको क्षणभरके लिए भी गोदसे नहीं उतारा।

२. दामोदरने वृक्ष उलट दिये !

नन्द महरके घर कमी किस बातकी थी ! दूध-दहीकी तो नदियाँ बहती थीं। माट-के-माट लोनीसे पटे पड़े रहते। हारेपर चढ़े गरम दूधपर दो-दो अंगुल मोटी साढ़ी चढ़ी पड़ी रहती। सारा घर दूध-दहीकी सोंधी महकसे महमहाता रहता। किरन फूटते ही माखन-

मिसरी और लोनी-चुपड़ी फुलकियोंका कलेवा ला धरा जाता। कन्हैयाको तो दूध-दही, मक्खन-मलाईकी ऐसी चाट लग चली कि जव जहाँ दाँव पाते वहीं हाथ जा मारते। उनके खेलने-खानेके दिन जो थे। कहीं कोई रोक-टोक थी नहीं। सारे घरमें किलकारी मारते जहाँ जो जीमें आता, खाते-गिराते-लुटाते घूमते।

इस दूध-दही-लोनीने थोड़े ही दिनोंमें राम-कृष्ण दोनोंकी देह पत्थरकी बना दी। वे तीन-तीन बरसके होते हुए भी दस-दस बरसके लगने लगे थे। घर और गाँवके बड़े-बूढ़ों और आने-जानेवालोंके पास उठते-बैठते उन्होंने आग बाँधने साँस रोककर डुबकी लगाने, जल बाँधने, साँप खेलाने, विस उतारने और भूख-प्यास हरनेकी सैकड़ों जड़ी-बूटियाँ, गुर और मन्तर-जन्तर चुटकी मारते सीख डाले। व्रजका कोई गाँव-पेंड़ा, नदी-नाला, खोह-गुफा, जंगल-पहाड़ ऐसा न बचा जो उन्होंने छान न मारा हो, जिसका भेद न फोड़ लिया हो।

वलदाऊ और कन्हैया रोहिणी और यशोदाके नैनकी पुतलियाँ तो थे ही, सारे व्रजकी आँखोंके तारे बन गये थे। यशोदाजीके बहुत बरजने टोकनेपर भी कोई दिन ऐसा न जाता कि एक-न-एक ग्वालिन कन्हैयाको नन्हा-मुन्ना करके, बहला-फुसलाकर अपने घर न लिवा ले जाती। अपनी कमरमें घुँघरूदार करधनी झनकाते जब वे ठुमक-ठुमक कर चलते, तो जो देखता, वह सौ-सौ जानसे उनपर निछावर हो पड़ता। उनके खेल देख देखकर सारा व्रज उनपर लट्टू हुआ रहता। कभी वे बछड़ोंकी पूँछ पकड़े उन्हें सारे गोठमें घुमाये लिये जाते तो कभी कुत्तों और भौरोंके साथ खेलते-नाचते दौड़ते।

मैया लाख बरजतीं : 'लाल ! वाके नेडे मती जाओ, काट खायगो।' पर लाला हैं कि किसीकी एक नहीं सुनते, अपनी धुनमें मगन रहते। कभी-कभी सबकी आँखें बचाकर वे गोकुलकी डगरमें चकरडण्ड लगाने लगते। जो बुलाता, उसीके साथ हो लेते। उन्होंने सारे व्रजमें चहल पहल मचा दी थी।

पहले तो गोपियोंने उन्हें परचा लिया, पर जब वे अपने ऊधम मचाने लगे और नटखटपनपर उतर आये, तब गोपियाँ आयेदिन एक-न-एक उलाहना लिये यशोदाके सिरपर सवार ! वे इतने ढीठ हो चले कि कभी किसीके बछड़े जा खोलते जो सारा दूध ढोक जाते, एक बूँद दूध न मिल पाता। कभी किसी ग्वालिनके सूने घरमें घुसकर ऐसी हुडदंग मचाते कि जो कुछ दूध-दही-मक्खन मिलता, सब खा-खिला आते।

वे भोले-भाले बच्चे अपना-पराया क्या जानें ? वे इतने परच गये कि सब घरोंको अपना ही घर समझ बैठे थे। वे दही-लोनी अपने तो खाते अपने साथियों और बन्दरोंको भी लुटाते चलते थे। कभी-कहीं रीते भाँड़े मिल जाते तो डण्डोंसे मार-मारकर उन्हें चकनाचूर कर डालनेमें भी नहीं चूकते थे। कभी किसीका घर अकेला पाते, तो माचाँपर पौढ़े हुए नन्हें-नन्हें छोरोंको च्योंटी भरकर रुलाकर भाग खड़े होते। कभी-कभी ओखलीपर पीढ़ा जमाकर छींकोंपर जतनसे फँसायी हुई मटकियाँ उतार-उतारकर सब मक्खन गटक जाते और फिर उन्हें ज्यों-का-त्यों वहीं उठा रखते। कभी-कभी जब पीढ़ेसे भी काम न बनता, तो एक-दूसरेके

कन्धेपर चढ़कर गौं लगाते। फिर भी पार न पाते तो अपने डण्डासे ठकठकाकर माटोंकी पेंदी ऐसी चतुराईसे छेद देते कि लाख आँख गड़ानेपर भी छेद सूझ न पाये।

अब ग्वालिनें भी ताकमें रहने लगीं कि मिलें तो पकड़कर ले जायँ। पर वे इतने चंट थे कि किसीके हाथ नहीं लग पाते थे। कभी अचानक पकड़में आ भी जाते, तो ऐसी-ऐसी बातें बनाते कि वह गोपी उनकी रसभरी बातोंपर ऐसी रीझती कि उसे छोड़ते ही बनता।

कभी-कभी वे ऐसे-ऐसे बेतुके बहाने बताते कि जो सुनती, वह या तो लजाकर ओढ़नीके पल्लेमें मुँह छिपा लेती या हँसते-हँसते लोट-पोट हो जाती।

कन्हैयाको भर-आँख देखनेके बहाने ग्वालिनें दिन-रात नन्दरानीके घर आ-आकर उलाहनेपर उलाहना दे-देकर उनकी देहली खूंदे डाले रहती। नन्दरानी भी करें तो क्या करें? उन्होंने लाख कन्हैयाको समझाया कि अपने घर किस बातकी कमी है जो तुम घर-घर झाँकते फिरते हो, बदनामी मोल लेते हो और अपने साथ हमारा भी नाम धरवाते हो। पर बच्चे तो बच्चे ही होते हैं। उनके लिए क्या अपना, क्या पराया?

× × ×

एक दिनकी बात है। भीतर घर्र-घों, घर्र-घों हो रहा था। नन्दरानी बैठी दही मथ रही थीं। कन्हैया उठकर उनके पास जा खड़े हुए। वे पीनेके लिए मचले पड़ रहे थे। उन्होंने झट रई जा पकड़ी और यशोदाजीकी कनियामें जा चढ़े। वे भी हाँडीपर रई-नेती छोड़कर कन्हैयाके बालोंपर हाथ फेरती हुई पिलाने लगीं।

इसी बीच हारेपर चढ़ा दूध उफन उठा। नन्दरानीने झट कन्हैयाको गोदसे उतार बैठाया और दूध सिराने लपक चलीं।

अब तो कन्हैयाकी भौंहोंमें बल पड़ गये। उनका मुँह तमतमा गया। उनके ओठ और नथने फड़क चले। उन्होंने आव देखा न ताव, झट सिलका बट्टा उठाया और भरे-मराये माटपर वह कसकर बरसाया कि माट टूक टूक हो गया। सारा दही बिखरकर आँगनतक जा बहा। अपनी आँखोमें सावन भादोंकी झड़ी लिये : "जे दूधका मोऊँने घनो प्यारो है। कहते, सुबकते हुए दूसरी कोठरीमें जाकर बासी मक्खन गपकने लगे।

इधर छींटे देकर और औटाया हुआ दूध हारेसे उतारकर यशोदाजी आती हैं, तो देखती क्या हैं कि दहेंडी ठीकरे हुई पड़ी है, दहीके पतनाले बह चले हैं। वे ताड़ गयीं कि लालाको छोड़कर ऐसी अचगरी कोई नहीं कर सकता।

उन्हें ढूँढती-ढाँढ़ती वे दूसरी कोठरीमें पहुँचीं, तो देखा कि आप ऊखलपर चढ़े चौकन्ने होकर दायें-बायें ताकते झाकते छींकेपर टँगी मटकीसे मक्खन निकाल-निकालकर बन्दरोंको लुटाये दे रहे हैं।

यशोदाजीको साँटी लिये आते देखते ही पहले तो ये सिटपिटाये। पर झट उन्हें क्या सूझा कि ऊखलसे कूदकर भाग चले। आगे-आगे आप और पीछे-पीछे यशोदाजी।

यशोदाजीको हँफनी चढ़ गयी। उनका जूड़ा खुलकर विखर गया। बड़ी देरतक आँगनमें गोल-चकरी घूमनेपर कहीं कन्हैया हाथ आ पाये।

कन्हैयाकी इस अचगरीसे वे ऐसी खीझ गयीं कि उन्होंने उसका हाथ जा पकड़ा। कन्हैया भी एक हाथकी ओट दिये सहमे जा रहे थे कि कहीं साँटी न बरसने लगे। जब यशोदा उन्हें कसकर डाँटने-डपटने लगीं तो उनकी आँखोंसे धार धार आँसू बह चले। सारे मुँहपर काजल ही काजल फैल चला।

जब यशोदाजीने देखा कि लाला बहुत सहम उठा है, तो उनका जी उमड़ आया। उन्होंने साँटी तो परे फेंक दी, पर उन्हें ऊखलसे जा बाँधा कि कहीं फिर न तोड़-फोड़ करने लगे। बाँध-जूड़कर वे अपने काम-धन्धेमें जा लगीं।

उधर यशोदाजीकी आँख फिरी, इधर कन्हैया उस ऊखलको सारे आँगनमें खींचते, घसीटते, लुढकाते चक्कर लगाने लगे। वहीं आँगनमें बहुत पुराना अर्जुनका जुड़वाँ पेड़ दो ओरको अपने तने चौड़ाये खड़ा था। उसकी जड़ें भी खोखली हुई पड़ी थीं। कन्हैयाको क्या सूझी कि चलो, उसके दोनों तनोंके वीचसे पार निकल चला जाय।

ज्यों ही वे उस पार हुए कि इधर ऊखल तिरछा होकर तनोंमें जा अटका। कन्हैयाने हुमचकर जो झटका दिया तो वे दोनों पेड़ देखते-देखते कड़कड़ाकर धरतीपर आ लोटे।

उनका गिरना था कि इधर-उधर आस-पाससे सब लोग दौड़ पड़े कि यह कहाँसे बिजली आ टूटी। वहाँ पहुँचते ही देखते क्या हैं कि अर्जुनके दोनों पेड़ जड़से उखड़े पड़े हैं। उनके बीच इधर ऊखल और उधर कन्हैया फँसे हैं।

यह देखते ही सबके देवता कूच कर गये। नन्द महरने दौड़कर रस्सी काटी और कन्हैयाको गोदमें उठाकर चूम लिया। पेड़ ऐसे गिरे थे कि कन्हैया बीचमें पड़ गये। उन्हें खरोंचतक न आयी।

उस दिनसे उनका नाम दामोदर (जिसके पेटसे रस्सी बँधी हो) पड़ गया।

केशीका कचूमर निकाला !

उग्रसेन-कुमार कंसने केशीके पास दूत भेजा और कहलवाया कि 'तुम श्रीकृष्णका वध कर डालो।' दूतकी बात सुनकर मनुष्योंको महान् क्लेश प्रदान करनेवाला दुर्जय दैत्य केशी वृन्दावनमें जाकर गोपोंको सताने लगा। केशी घोड़ेके रूपमें रहनेवाला दुर्दान्त दैत्य था और मनुष्यका मांस खाता था। उस दुष्ट पराक्रमी असुरने कुपित होकर महान् संहार आरम्भ कर दिया। वह ग्वालोंसहित गौओंको मार डालता और गौओंका मांस खाया करता था। मदमत्त केशी स्वच्छन्द विचरनेवाला और उच्छृङ्खल था। अश्वरूपधारी दुष्टात्मा दानव केशी जहाँ रहता, वह वन मनुष्योंके मांस और हड्डियोंसे व्याप्त होकर श्मशानभूमिके समान प्रतीत होता था। वह टापोंसे पृथ्वीको विदीर्ण कर देता और वेगसे वृक्षोंको भी तोड़ डालता था।

हींसते या हिनहिनाते समय प्रचण्ड वायुके कोलाहलसे होड़ लगाता और उछलकर आकाशको भी लाँघ जाता। वह वनमें विचरनेवाला दुष्ट अश्व बहुत बड़ा और मतवाला था। उसके अयाल कुछ हिलते रहते थे।

वह पापाचारी दैत्य समस्त गोपोंको मार डालनेकी इच्छा रखता था। उसने वह सारा वन मनुष्योंसे सूना कर दिया। वहाँ डरके मारे न कोई मनुष्य आता था, न पशु। वह मदमत्त दुराचारी दैत्य अधिकतर मनुष्योंके ही मांस खाता था। जहाँ वह रहता था, उस स्थानकी ओर जानेवाला मार्ग अगम्य हो गया था।

एक दिन उसके कानोंमें मनुष्योंके शब्द सुनायी पड़े। उस शब्दका अनुसरण करता हुआ केशी वृन्दावनके भीतर गोपोंकी बस्तीमें गया। उस समय उसपर काल सवार था। उसे देखते ही गोप भाग चले। गोपियाँ भी शिशुओंके साथ भागने लगीं। वे सबके सब करुण क्रन्दन करते हुए जगदीश्वर श्रीकृष्णकी शरण आ पहुँचे।

श्रीकृष्णने उन्हें अभयदान दिया और स्वयं केशीपर टूट पड़े। केशी भी गर्दन ऊपर उठाये बड़े वेगसे श्रीकृष्णकी ओर चला। वह टापोंसे धरती खोद रहा था। उसने सहसा श्रीहरिको अपने मस्तकपर ले लिया और आकाशमें सौ योजनोंतक उन्हें उछाल-उछालकर घुमाया; अन्तमें जानबूझकर पृथ्वीपर गिर पड़ा। फिर दायें-बायें चक्कर काटता हुआ वह अपने दोनों पैरोंसे क्रोधपूर्वक वृक्षोंको तोड़ने लगा। उसके मुखसे पसीने की बूँदें टपक रही थीं। वह मुखसे धूलिमिश्रित फेनकी वर्षा कर रहा था। उसकी टापोंसे उठकर फैली धूलने श्रीकृष्णके मस्तकके बालोंको कुछ लाल-सा कर दिया।

वह श्रीकृष्णके साथ उलझ गया, उसने अपने दोनों आगेवाले पैरोंसे श्रीकृष्णकी छातीमें करारी चोट दी और उनकी भुजाके अग्रभागको दाँतोंसे चबाना आरम्भ कर दिया। तब श्रीकृष्णने अपनी उस बाँहको लम्बी कर उसके गलेमें घुसा दिया। उस भुजाके स्पर्शसे तत्काल उसके सारे दाँत टूटकर गिर गये और वह मुखसे फेनसहित रक्त वमन करने लगा। उसके ओठ और गलफर फटकर दो दलोंमें विभक्त हो गये। स्नायु-बन्धन ढीले हो जानेपर उस दैत्यकी आँखें फटकर बाहर निकल आयीं। होठोंका निचला भाग फटकर निकल गया। कान भी उखड़कर गिर पड़े। चेतना लुप्त हो गयी और वह छटपटाने लगा। बार-बार दोनों पैरोंको उछालने और मल-मूत्र छोड़ने लगा। उसका एक-एक अंग और रोम-रोम खिन्न हो उठा और अन्तमें थककर वह निश्चेष्ट हो गया।

श्रीकृष्णने अपनी बाँहको बहुत बढ़ाकर उस दैत्यके शरीरको बलपूर्वक बीचसे चीर डाला। इस प्रकार युद्धमें केशीको मारकर और उसके शरीरके टुकड़े करके भगवान् श्रीकृष्ण हँसते हुए वहाँ खड़े रहे।

केशीको मारा गया देख गोप-गोपियोंको बड़ी प्रसन्नता हुई। सब श्रीकृष्णकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए उनकी जय-जयकार करने लगे। अन्तरिक्षमें स्थित हुए नारदजीने स्तुति

की । स्वर्गमें दुन्दुभियाँ बजने लगीं । फूलोंकी वर्षा आरम्भ हो गयी । गोलोकसे विमान उतरा और दिव्यदेहधारी केशीको लेकर परमधाममें जा पहुँचा ।

केशी पूर्वजन्ममें गन्धर्वराज गन्धवहका पुत्र था । उसका नाम था सुपार्श्व । उससे भगवान् शिवका अपराध बन गया था, जिससे उनका शाप प्राप्तकर वह दानव हो गया था । पूर्वजन्ममें वह श्रीकृष्णभक्त वैष्णव था; अतः श्रीकृष्णके ही हाथों उसका उद्धार हुआ ।

तृणावर्तकी आँधी साफ !

एक दिन नन्दरानी यशोदा शिशु कृष्णको गोदमें लिये घरके कामकाजमें लगी हुई थीं । उस समय गोकुलमें बवंडरका रूप धारण करनेवाला तृणावर्त आ रहा था । श्रीकृष्णने मन-ही-मन उस असुरके आगमनकी बात जान ली, और अपने शरीरका भार कुछ बढ़ा लिया । उस भारसे पीड़ित हो मैया यशोदाने लालाको गोदसे उतार दिया और खाटपर सुलाकर वे यमुनाजीके किनारे चली गयीं । इसी बीच वह बवंडररूपधारी असुर वहाँ आ पहुँचा और उस बालकको लेकर घुमाता हुआ कई योजन ऊपर उड़ गया । उसने वृक्षोंकी शाखाएँ तोड़ डालीं और इतनी धूल उड़ायी कि गोकुलमें अँधेरा छा गया । फिर वह स्वयं श्रीहरिके भारसे आक्रान्त होकर वहीं पृथ्वीपर गिर पड़ा । श्रीकृष्णका स्पर्श प्राप्त करके वह असुर भी भगवद्धामको चला गया । अपने कर्मोंका नाशकर वह सुन्दर दिव्यरथपर आरूढ हो गोलोकमें जा पहुँचा ।

अपने पूर्वजन्ममें केशी पाण्डयदेशका राजा था और दुर्वासाके शापसे असुर हो गया था । श्रीकृष्णके चरणोंका स्पर्श प्राप्त करके उसने गोलोकधाममें स्थान प्राप्त कर लिया ।

बवंडरका उपद्रव शान्त होनेपर जब शिशु श्रीकृष्णकी खोज की गयी तो उसे शय्यापर न पाकर सब लोग व्याकुल हो उठे । कितने ही भयसे छाती पीटने लगे । कुछ लोग फूट-फूटकर रोने लगे और कितने लोग मूर्छित हो गये । खोजते-खोजते वह बालक व्रजके भीतर एक फुलवाड़ीमें पड़ा दिखायी दिया । नन्दजीने तत्काल बच्चेको उठाकर छातीसे लगा लिया और उसकी रक्षाके लिए मङ्गलपाठ करवाया ।

●

भूल-सुधार

श्रीकृष्ण-संदेश वर्ष ८ अङ्क ११ के पृष्ठ ३३ के पहले पैराग्राफ की सातवीं-आठवीं पंक्ति में भागवत-भवनके संबन्धमें यह भूलसे छप गया है कि इस भवनके शिखरकी ऊँचाई २।। फुट होगी । यहाँ २।। फुटको जगह २।। सौ फुट समझना चाहिए ।

●

पुरुषार्थीकी अद्भुत गुरु-दक्षिणा

★

वसुदेवजीने देखा कि बलराम और कृष्ण नौ-दस बरसके हो चले हैं। अब इनका जनेऊ करा डालना चाहिए। उन्होंने गर्गजीको बुलाकर दोनोंका जनेऊ करा दिया। दोनों भाई सवेरे-साँझ संध्या-हवन करने लगे, गायत्री जपने लगे। उन दिनों काशीके सान्दीपनि मुनिका बड़ा नाम था, जिन्होंने उज्जैनमें अपना गुरुकुल चला रखा था। बस, वसुदेवजीने दोनों भाइयोंको वहीं पढ़ने भेज दिया।

वे जानते थे पढ़ने-घोखनेसे उतनी विद्या पल्ले नहीं पड़ती जितनी गुरुजीकी सेवा करनेसे। इसलिए वहाँ जाकर दोनों भाई जी-जानसे गुरुजी की सेवामें जुट गये। उस गुरु-कुलमें छोटा-बड़ा, ऊँच-नीच, धनी-कंगाल, सब बराबर थे। औरोंके साथ ये दोनों भाई भी मन लगाकर गुरुजीका पानी भरें, झाड़ू-बुहारू करें, समिधा चुनें, कुशा उपाड़ें, लकड़ी काटें, गउएँ चरायें, धार निकालें, यज्ञशाला धोयें-पोछें, कपड़े पछाड़ें। गुरुजीको नहलायें-धुलायें, उनके पैर पलोटें, तेल मलें। जितना भी घरका और गुरुकुलका काम हो, सब सच्चे मनसे करें। कभी आलसका नाम न लें, क्योंकि जहाँ आलस आया कि विद्या नौ दो ग्यारह हुई।

यहीं कन्हैयाके साथ सुदामा भी पढ़ते थे, जिनसे कन्हैयाकी दाँत-काटी रोटी थी। पढ़ें तो साथ, खेलें तो साथ। दोनों दो तन, पर मन एक थे।

सब कुछ पढ़-लिख चुकनेपर दोनों भाइयोंने गुरुजीसे हाथ जोड़कर कहा : "आपने हमें पढ़ा-लिखाकर जो आदमी बनाकर खड़ा किया है, उस भलाईका बदला हम इस जनममें तो क्या, सौ जनमोंमें भी नहीं चुका सकते। फिर भी आप जो गुरुदक्षिणा कहिये, हम लाकर देनेमें अपना बड़ा भाग समझेंगे।"

गुरुजीने गुरुआनीजीसे जा पूछा और आकर कहा : "हमारा एक ही लड़का था जिसे प्रभासक्षेत्रसे न जाने कौन उठा ले गया। बस, उसीको ला दो तो सबसे बड़ी गुरुदक्षिणा मानी जायगी।"

सुनते ही दोनों भाई प्रभासक्षेत्रमें समुद्रतीरपर जा पहुँचे। वहाँ उन्होंने समुद्रके मुखियाको बुलाकर कहा कि 'हमारे गुरुजीका बेटा जो भी ले गया हो, उससे कहो कि चुपचाप कान-पूँछ दबाकर झटपट ला पहुँचाये। नहीं तो एक-एककी चमड़ी उधेड़कर रख दी जायगी।

मुखिया तो उनके नामसे ही थर्रा उठा। उसने गिड़गिड़ाते हुए कहा : "जी, हम लोग तो नहीं ले आये। हाँ, समुद्रके भीतर टापूमें शंख नामका समुद्री डाकू ही यह सब उटकपैंज किया करता है। वही ले गया हो तो ले गया हो।"

सुनते ही बड़ेसे बजड़ेपर पाल चढ़ाकर पवनकी चालके साथ पतवार घुमाते ये उस टापूपर जा चढ़े। जाते ही एक ही चपेटमें शंखको धरती सुँघा दी। पर वहाँ भी वह गुरुजीका बालक ढूँढ़े नहीं मिल पाया।

वहाँसे आगे चलकर इन्होंने संयमनी-पुरीके टापूपर जा लंगर डाला। वहाँके राजा यमने इनकी बड़ी आव-भगत की और पूछा : "हम आपकी क्या सेवा करें ?'

कन्हैयाने कहा : "हमारे गुरुजीके बेटेको कोई यहाँ पकड़ लाया है। उससे कुछ कुचाल हो भी गयी हो, तो उसे भुलाकर उसे हमारे हाथ सौंप दो।"

सुनते ही यमने वह बालक लाकर उन्हें सौंप दिया। वहाँसे चलकर उसे साथ लिये वे उज्जैन लौट आये।

इतने दिनोंपर अपना खोया हुआ बेटा पाकर गुरुजी और गुरुआनीजीकी उमंगका ठिकाना न रहा। वे ऐसे मगन हुए कि उनके रोम-रोम दोनों भाइयोंको असीसें डाल रहे थे।

उन्हें हाथ जोड़कर और उनसे विदा लेकर दोनों भाई हँसते-खेलते मथुरा लौट आये।

●

तुलसीकी कविताई मैं

सुन्दर असन चाहौ भूखन बसन चाहौ
धर्म मैं धसन चाहौ वसन भलाई मैं,
अंगन अरोग चाहौ भाँति-भाँति भोग चाहौ
सिद्ध कियो जोग चाहौ जो पै जग याई मैं।
बरनत भट्ट लेन अद्भुत उक्ति चाहौ
मुक्ति हूकी युक्ति तो पै प्रगट बताई मैं,
दारिद दरन चाहौ भौ भै हरन चाहौ
करन लगाओ तुलसीकी कविताई मैं॥

—'भट्ट'

जब 'बाण' ने भी घुटने टेक दिये !

*

[भगवान् कृष्णके पौरुषका एक नमूना तो रुक्मिणीके हरणके समय ही प्रकट हो चुका था। किस तरह वे शिशुपालादि वीर और सगे भाई रुक्मी आदिके न चाहते हुए भी देवीके दर्शनार्थ गयी रुक्मिणीको अपने रथपर बिठा हरण कर लाये थे, यह कृष्णचरित्रके रसिक भलीभाँति जानते हैं।

यही नहीं, उन्होंने अपने पोते अनिरुद्ध तकके ब्याहमें भी अपने पौरुषका नया निदर्शन दिखा दिया। लाख विरोध करनेपर भी जब उसकी बहन रुक्मिणी कृष्णकी बन गयी, तो वह शह खा गया। कहीं मेरे इस विरोधसे बहन मनमें कोई दुर्भाव न रखे, इसलिए उसने अपनी पोती 'रोचना' रुक्मिणीके पोते अनिरुद्धसे ब्याह दी। लेकिन ब्याहमें ही कलिंगराजके बहकावेमें आकर वह भगवान् कृष्णके बड़े भैय्या बलरामसे छेड़खानी कर बैठा और उसे जानसे हाथ धोने पड़े।

अनिरुद्धके ऊषासे दूसरे ब्याहमें जब उसके पिता बाणासुरने अनिरुद्धको नागपाशमें बांधा तो स्वयं श्रीकृष्णने वह पौरुष दिखाया कि शङ्करका पृष्ठपोषण पानेवाले बाणासुरको भी अन्ततः उनके सामने घुटने टेक देने पड़े। कैसे ? तो पढ़िये :]

जिन महाराज बलिने बौने वामन बन दान माँगने आये भगवान्‌को अपना सारा राजपाट दो डगमें नपवा डाला था, उनके सौ बेटोंमें बाण (बाणासुर) सबसे जेठा था। उन दिनों चारों ओर उसीकी तूती बोलती थी। भगवान् शंकरका भी उसकी पीठपर हाथ था। इसलिए वह और भी फूलकर कुप्पा हुआ जा रहा था। यों भी वह बड़ा अच्छा था। सबके आड़े टेढ़े दिनोंमें काम आता। इसलिए लोग उसे जी-जानसे प्यार करते, बहुत मानते थे। वह अपनी बातका भी धनी था। जो मुँहसे निकल गया, वह पत्थरकी लकीर बनी समझो। जिसकी बाँह थामी, उसके हो गये। उसपर आँच न आने दी, उसका बाल न बाँका होने दिया।

वह शोणितपुरमें अपना गढ़ बनाये चैनकी नींद सो रहा था। जब लड़नेपर उतारू हो जाता, तो ऐसा घमासान छेड़ता कि जान पड़ता हजार हाथोंसे लड़े जा रहा है ! गाने-बजानेमें भी वह बेजोड़ था। जब वह शिवजीके नाचके साथ सैकड़ों बाजे सजाकर बजाने बैठ जाता, तो ऐसा लगता कि हजारों बाजे एक साथ बजे चले जा रहे हैं।

इसी बाणासुरकी बेटी ऊषा ऐसी प्यारी, सलोनी और मनभावनी थी कि परियाँ उसकी झलक पा लें, तो जान दे डालें। उसका रंग ऐसा गोरा-चिट्टा था कि हाथ धो दे, तो दूध बन जाय। उसकी चुंबकभरी आँखोंमें वह जादू था कि पहाड़की ओर घूम जाय तो पहाड़ खिंचा चला आये।

एक दिन वह सोये-सोये सपना देखने लगी कि कोई सलोना-सा सजीला छैला उसके पास आया वैठा है। सपनेमें ही वह वर्रा उठी : "प्यारे कहाँ हो ?"

मुँहसे इतना निकलना था कि उसकी नींद टूट गयी। वह हड़बड़ाकर उठ वैठी। जब उसने देखा कि सहेलियाँ घेरे वैठी हैं, तो झेंपके मारे उसका मुँह कुंदरू बन चला।

जब सब सहेलियाँ हट-बढ़ गयी और अकेली चित्रलेखा रुकी रही, तब उसने अपने मनकी सारी राई-रत्ती उसके आगे खोल धरी।

चित्रलेखा थी वाणासुरके मन्त्री कुम्भाण्डकी वेटी, जिसकी ऊषासे दाँत-काटी रोटी थी। इसलिए उसने भर्राये गले और अँसुवाई आँखोंसे उसे निरालेमें अपने जी की सारी बात कह सुनायी : "क्या कहूँ, बहन ! सपनेमें देखती क्या हूँ कि एक साँवला-सा सजीला जवान मेरे पास आया वैठा है। उसकी कजरारी आँखें क्या थीं, खिले हुए कमल थे। देह-पर पीताम्वर फर-फर फहराया पड़ रह था। लम्वी-लम्वी ढली हुई-सी चिकनी चिकनी वाँहें ऐसी सुहावनी कि जी करे, इन्हींमें कसे वैठा रहा जाय। पलभरमें ही झलक दिखाकर वह न जाने कहाँ ओझल हो गया ! उसे देखे विना जी तड़पा जा रहा है, आँखें कड़वाई पड़ रही हैं। अव एक तुम्हारा ही सहारा रह गया है। जिलाओ तो जी जाऊँ। नहीं तो गयी समझो।'—वह धीरज खोकर सिसक उठी।

चित्रलेखाने उसके मुँहपर पानीके छींटे मारे, अपने पल्लेसे उसकी आँखें पोंछीं और उसे छातीसे चिपटाकर उसके गालोंपर हाथ फेरते, पुचकारते, ढाढ़स बँधाते हुए कहा : 'वस, यह रोना-धोना ठंढा करो ! तुम्हारा चितचोर जो भी होगा, जहाँ भी होगा, उसे यहीं तुम्हारे पास ला पहुँचाये देती हूँ। देखो, मैं वहुत-सी मूरतें खींचे देती हूं। इनमेंसे जिसे तुमने सपनेमें देखा हो, बता देना। बस, आगे मैं सब समझ लूँगी।' चित्रलेखाने रंग और कूँची उठायी और वातकी वातमें एकसे एक रंग-विरंगी मूरतें बना धरीं।

ज्यों ही उसने अनिरुद्धकी मूरत खींची कि ऊषाके कान लाल हो गये : 'यही है।'

चित्ररेखा कोई ऐसी-वैसी सहेली नहीं थी। वह पंछी बनकर आकाश नाप ला सकती थी; मगरमच्छ वनकर पानीमें डुवकी मारकर मोती झँझोर ला सकती थी; धरतीका पेट चीरकर कोना-कोना झाँक आ सकती थी। मनमें आये, तो तारे तोड़कर हाथपर ला धरे। कोई काम ऐसा नहीं जो उसकी गँसे वाहर हो। कहभर देनेकी देर है। इधर कहा और उधर हुआ ही समझिये।

बस, वह ऊषाको ढाढ़स वँधाकर तारोंकी छाँहमें सबकी आँखोंपर झाँई डालती द्वारका जा पहुँची। वहाँ पहुँचकर वह देखती क्या है कि अनिरुद्ध सुनहरे पलंगपर पौढ़े मीठे सपनोंमें खोये सोये पड़े हैं। चित्रलेखा पलंगके साथ अनिरुद्धको ऐसे उठाकर उड़ चली, जैसे हंसनी कमलकी नालके जालपर सजा कमल उठाये लिये उड़ी चली जा रही हो :

पलक मारते उसने शोणितपुर पहुँचकर धीरेसे ऊषाके आगे वह पलंग ला टिकाया। ऊषाके तो जैसे गये प्राण लौट आये। वह टकटकी बाँधे अनिरुद्धका रूप आँखोंसे पिये जाय; पर वह प्यास ऐसी कि जितना पिये, उतनी ही दुगुनी होती जाय।

कुछ देरमें अचानक अनिरुद्धकी आँखें खुलीं, जैसे कमलकी पँखुड़ियाँ खिल उठी हों, मुसकरा उठी हों। चारों और पुतलियाँ घुमा-घुमाकर वह अचम्भेमें पड़ा देखे जा रहा था कि मैं यहाँ कहाँ ला पहुँचाया गया? पर जब चित्रलेखाने सब खोलकर समझा दिया, तब अनिरुद्धकी समझमें आया कि मैं कहाँ हूँ। उसकी आँखें ऊषाको देख खिली पड़ रही थीं। थोड़ी ही देरमें वह उसकी लुभावनी मूरतमें खो गया।

ऊषाकी अटारीके पहरुओंको भी धीरे-धीरे कुछ आहट लग चली। पर किधरसे कौन वहाँ आया है, यह उनके देवता भी न भाँप पाये। अपनी पगड़ी बचाये रखनेके फेरमें उन्होंने धीरेसे बाणासुरके कानमें जा फुसफुसाया कि हम आपका नमक खाते हैं, इसलिए कहे देते हैं कि ऊषाकी अटारीमें कोई आया बैठा है। ऐसा न हो कि आपके इतने ऊँचे नामको बट्टा लग जाय, पगड़ी उतर जाय, दस लोगोंमें नामूसी हो, लोग उंगलियाँ उठाने लगें, नाक कट जाय, बनी-बनायी पत लुट जाय, जमी-जमायी साख उखड़ जाय।'

बाणासुरने सुना तो उसको पैरों तलेसे धरती खिसकती जान पड़ने लगी। उसकी आँखें अंगारे बनकर दहक उठीं। वह पहरुओं और सिपाहियोंको साथ लिये ऊषाकी अटारीपर चढ़कर झाँकते ही देखता क्या है कि अनिरुद्ध ऊषाके साथ बैठा चौसर खेलनेमें मगन है। सिपाहियोंको देखते ही अनिरुद्ध भी लोहेका मूंगरा लेकर उछल खड़ा हुआ और लगा एक-एकको धमाधम्म धुनने। उसके आगे वे ठहर भी कहाँ पा सकते थे? पलभरमें सब जान ले-लेकर भाग खड़े हुए।

बाणासुरने उसका यह करतब देखा, तो तिलमिला उठा। उसने झट नागफाँस फेंककर अनिरुद्धको धर जकड़ा। ऊषा कुररी बनकर सिर पटक-पटककर रोती-चिल्लाती रह गयी, पर उसकी सुननेवाला वहाँ कौन था?

इधर अनिरुद्धके अचानक उड़ा लिये जानेसे सारी द्वारिकामें हाय-हाय मची हुई थी। चारों और खोजायी-ढुँढ़ायी हो रही थी।

इसी बीच कृष्णको आहट मिली कि बाणासुरने उसे नागफाँसमें जकड़कर अपने यहाँ रखा है। सुननेभरकी देर थी कि यदुवंशियोंने जुझारू बाजे और धौंसे बजाकर शोणितपुर पर जा चढ़ाई की। दोनों ओरसे घमसान लड़ाई छिड़ गयी। कृष्ण और बलरामने धुआँधार बाण बरसाये कि बाणासुरके सिपाहियोंके छक्के छूट गये और वे मैदान छोड़कर पीठ दिखाकर भागते दिखायी दिये।

बाणासुर भी उनके आगे बहुत देरतक नहीं टिक पाया। वह तो कहिये कि उसके दिन अच्छे थे, जो कोटरा देवीने बीचमें पड़कर बीच-बिचाव कर दिया। नहीं तो बाणासुरके भी अजर-पंजे ढीले हो गये होते।

फिर तो बाणासुरने कृष्णके आगे घुटने टेक दिये। बड़ी धूमधामसे ऊषाके साथ अनिरुद्धका ब्याह हो गया और दोनोंको साथ लेकर कृष्ण और बलराम द्वारिका लौट आये।

●

रीछको पटक मारनेवाले नर-नाहर !

श्री 'वनवासी'

★

मथुरापर जरासंधके आयेदिनके धावोंसे ऊबकर कृष्ण महाराज उग्रसेनके साथ द्वारिकामें जा बसे। वह यादवोंकी ऐसी अटूट गढ़ी बन गयी थी कि वहाँ पंछीतक पर न मार पाते थे।

वहाँके सत्राजित यादवने उन दिनों सूरजकी बड़ी पूजा करके स्यमन्तक नामकी ऐसी मणि पा ली थी कि जो उसे पूजे, उसके हाथपर वह आयेदिन सवेरे आठ भार (मन) सोना निकाल धरे। जब उसने पहले-पहल उसे गलेमें डाले द्वारकामें पैर धरा तो जो उधर ताके, उसीकी आँखें उसकी चमकसे चौंधियाकर मुंद जातीं। उसे देखकर ऐसा लगता कि सूरज ही उतरा चला आ रहा है। उसकी चकाचौंधमें कोई पहचानतक न पाता कि यह सूरज नहीं, सत्राजित है।

जिन्होंने उसे आँखें भर देखा नहीं था और उसे सूरज समझ बैठे, वे हड़बड़ाये दौड़े, कृष्णके पास पहुँचे और बताया कि 'लीजिये सूरज ही आपसे मिलने उतरा चला आ रहा है।' कृष्णने खिड़कीसे बाहर झाँका, तो ठहाका मारकर हँस पड़े, : "अरे, कहाँकी बात कह रहे हो ? यह तो सत्राजित है, जिसके गलेकी मणि चकाचौंध किये डाल रही है।" कहकर वे अपने खेलमें रम गये।

इधर ज्यों ही सत्राजित घर पहुँचा, त्यों ही सबने उसे हाथों-हाथ उठा लिया। बड़ी धूमधाम और बाजे-गाजेके साथ वह मणि पूजाघरमें पधरा दी गयी। वह मणि क्या थी, सोनेकी खान। सवेरे पूजा करते ही उसमेंसे आठ मन सोना निकल धरा रहता था। उसमें न जाने ऐसा क्या जादू था कि जहाँ रह जाय, वहाँसे अकाल काला मुँह करके भाग खड़ा हो, महामारी मारी-मारी धक्के खाती फिरे, विसैले नाग भी नाक मुँहछिपाये बिलोंमें दुबकते दिखायी दें और कोई भी रोग उधर झाँकने तकका नाम न ले।

एक दिन यों ही बात-बातमें कृष्णने सत्राजितको जा छेड़ा "क्यों भाई सत्राजित, यह मणि तुम महाराज उग्रसेनको क्यों नहीं दे डालते। यह सब तो राजाको ही फबता है।"

पर वह ऐसा मक्खीचूस था कि उसके कानपर जूंतक न रेंगी। वह सुनी अनसुनी कर गया। इस कानसे सुना, उस कानसे निकाल दिया। बात आयी और चली गयी।

इसी बीच एक दिन सत्राजितके भाई प्रसेनजित्को बैठे-बिठाये न जाने क्या सूझी कि वह गलेमें मणि डाले घोड़ेपर चढ़ा और सरपट अहेरके लिए जंगलमें जा निकला। वह अभी पहुँचा ही था कि एक बड़ा-सा नाहर उसपर आ झपटा और उसने घोड़ेके साथ-साथ उसे भी फाड़ खाया। उन्हें खा-पीकर वह मुँहमें मणि उलझाये पहाड़ी गुफामें बैठा ही था कि मणिकी चमकसे सारी गुफा जगमगा उठी। उसमें बसे जाम्बवान्की आँखें उसकी चकाचौंधसे खुल गयीं। उसने निकलकर नाहरको देखते ही धर पछाड़ा और वह मणि ले जाकर अपने बच्चोंको दे डाली।

जब दो दिनोंबाद भी प्रसेनजित् न लौटा, तो उसके घर रोना-पीटना मच गया। सत्रा-जितके मनमें चोर बैठ गया कि हो न हो, कृष्णने ही मणिके लिए मेरे भाईको ठिकाने लगाया हो, क्योंकि उन्होंने ही राजा उग्रसेनको मणि देनेकी बात चलायी थी। जो पूछे, उससे वह यही घूम-घूमकर कहता फिरे।

ऐसी बातोंको बातकी बातमें पंख लग चलते हैं। एक कानसे दूसरे कानमें पड़ते-पड़ते यह बात कृष्णके कानतक भी जा पहुँची। वे तो सुनते ही धक्क रह गये। यह कहाँसे बैठे-बिठाये कलंक माथे मढ़ा गया। उन्होंने झट मनमें ठान लिया कि जैसे भी हो, यह कालिख तो धो बहानी ही होगी।

द्वारिकाके कुछ बड़े लोगोंकी टोली बनाकर वे प्रसेनजित्की टोहमें निकल पड़े। घोड़ेकी टापोंके छापके सहारे लीक पकड़ते हुए वे बीच जंगलमें पहुँचकर देखते क्या है कि दूरतक प्रसेनजित् और उसके घोड़ेकी अधचबाई हड्डियाँ ही हड्डियाँ और अधखाये लोथड़े ही लोथड़े छितराये पड़े है।

देखते ही समझनेमें देर न लगी कि किसी नाहरने उन्हें फाड़ खाया है। नाहरके पंजोंकी छापका सहारा लिये वे कुछ ही आगे बढ़े थे कि देखा, पहाड़की गुफाके बाहर ही नाहरको भी किसीने मार फेंका और वह गुफामें जा घुस बैठा है।

कृष्णने अपने साथके लोगोंको बाहर रोक बैठाया और अकेले ही उस गुफामें बढ़ चले। वहाँ इतना अन्धेरा गुप्प था कि हाथको हाथ नहीं सूझता था, फिर भी सम्भालकर पग धरते, छूते-टटोलते वे आगे बढ़ते ही चले गये। कुछ हीं दूर आगे बढ़नेपर उन्हें दिनका-सा उजाला फैला दिखायी दिया। वे ताड़ गये कि यह उजाला मणिको छोड़ और किसीका नहीं हो सकता। दस पग आगे बढ़ते ही वे देखते क्या हैं कि स्यमन्तकमणि हाथमें लिये बच्चे खेल रहे है।

कृष्णको देखते ही बच्चोंकी धाय ऐसा गला फाड़कर चिल्लायी कि जाम्बवान् आँखें मलते निकल आया और आव देखा न ताव, आते ही कृष्णसे भिड़ गया।

फिर क्या था! दोनोंमें जो गुत्थमगुत्था और उठा-पटक हुई कि कोई भी न तो पीछे हटनेका नाम लेता और न सुस्ताने का।

पर कृष्ण भी कम खेलाड़ी नहीं थे। उन्होंने भी वह कस-कसकर घूँसे जमाये कि जाम्बवान्की आँखोंके आगे तारे छिटक आये। उसके जोड़-जोड़ हिल गये और वह मार पसीनेसे लथ-पथ हो चला। अब तो उसने हाथ जोड़ लिये : 'बस, हो चुका! मैं क्या जानता था कि आप कृष्ण है? नहीं तो भला मुझसे कौन इतनी देर उलझकर बचा रह सकता था? आइये, पधारिये।'

कृष्णने कहा : 'भाई, मैं बैठने नहीं आया हूँ। मुझे इस मणिकी चोरी लगायी गयी है। इसलिए मुझे तो बस, यह मणि ही यहाँतक खींच लायी है।'

जाम्बवान्ने कहा : 'यह कौन सी बड़ी बात है। यह तो आप ले ही लीजिये, मेरी बेटी जाम्बवतीको भी साथ लिवा ले जाइये। आजसे यह आपकी हुई।'

जाम्बवान्ने मणि तो दे ही दी, जाम्बवतीको भी नख-शिख विभूषित कर उनके साथ गुफाके बाहरतक पहुँचा दिया।

इधर जिन लोगोंको कृष्ण गुफाके वाहर छोड़ गये थे, उन्होंने वारह दिनोंतक तो वाट देखी। पर जव वे इतने दिनोंतक भी लौट न आये, तो वे सव रोते-कलपते, सिर धुनते छाती-पीटते द्वारिका लौट आये। अव तो जिसने सुना, उसीने छाती पीट ली। सारी द्वारिकामें रोना-पीटना मच गया। सभी लोग लगे पानी पी-पीकर सत्राजितको कोसने कि 'इसीने आज हमें यह वुरा दिन दिखाया। न यह चोरी लगाता, न कृष्ण उधर जाते।'

जिसे देखो, वही मनौतियाँ मना रहा है कि कृष्ण जीते-जागते, हँसते-खेलते लौट आयें, तो यह करें वह करें। सारी द्वारिका आहों और आँसुओंमें डूवी पड़ रही थी। कोई उवारने-वाला नहीं दिखायी दे रहा था।

अभी यह रोना-धोना चल ही रहा था कि अचानक लोग देखते क्या है कि गलेमें मणि लटकाये और नयी-नवेली दुलहनका हाथ थामे कृष्ण हँसते-मुसकराते पग वढ़ाते चले आ रहे हैं। यह देखते ही सारी द्वारिका जो थोड़ी देर पहले मुरझायी पड़ी थी, हरी होकर ऐसे लहलहा उठी, जैसे मुरझायी वेलपर अचानक दौंगड़ा वरस गया हो। सारी द्वारिका उमंगसे फूल उठी। लोग कृष्ण, मणि और जाम्ववतीको नैनभर देखनेके लिए दौड़ पड़े। सारी द्वारिका उनके आँगनमें उलटी पड़ रही थी।

जव भीड़ छँट चली और सव लोग हँसते-कूदते अपने-अपने घर लौट गये, तव कृष्णने सत्राजितको महाराज उग्रसेनकी सभामें बुलवा भेजा और पंचोंके आगे सारी आप-वीती सुनाकर वह मणि सामने खोल रखी।

सारा कच्चा-चिट्ठा सुनकर सत्राजितपर तो घड़ों पानी पड़ गया। वह लाजसे गड़ा जा रहा था। उसने वड़ी झेंपके साथ मणि ले तो ली, पर उसका जी भीतर ही भीतर कचोटे जा रहा था कि कृष्णको झूठी चोरी लगाकर जो मैंने पाप कमाया है, इसे कैसे धो मिटाया जाय। वह ज्यों-त्यों करके उठकर अपने घर तो चला गया, पर मन ही मन यही मनाये जा रहा था कि धरती फट जाय और मैं उसमें समा जाऊँ।

अचानक एक जुगत उसके माथेमें विजली-सी कौंध गयी : 'क्यों न इस मणिके साथ-साथ अपनी वेटी सत्यभामा ही कृष्णको जा सौंपूँ ?'

सूझनेभरकी देर थी। अगले दिन तड़के-तड़के हाथ-मुँह धोकर, पूजा-पाठ करके सत्यभामाको लिये-दिये वह पहुँच ही तो गया कृष्णके पास।

कृष्णकी समझमें नहीं आ रहा था कि यह सवेरे-सवेरे कहाँसे आ धमका? अव क्या करनेपर उतारू है? पर जव सत्राजितने अपने मनकी वात खोल कही, तव कृष्णने कहा : 'नहीं, भाई मणि तो हम छूयेंगे नहीं। हाँ, सत्यभामाको हम सिर आँखोंपर लिये लेते हैं।'

जव सत्राजितने वहुत हठ ठाना, तव कृष्णने समझाया : 'भाई तुम सूरजकी पूजा करते हो, इसलिए मणि तो तुम अपने ही पास रखो। पर तुम्हारी यही हठ है तो इससे मिलता रहनेवाला सोना चाहो तो देते रहा करना।'

सत्राजित मान गया और वड़ी धूमधामसे कृष्णके साथ सत्यभामाका व्याह हो गया।

●

वस्त्रावतार

निर्बलके बल कृष्ण !

कु० प्रेमप्रभा तिवारी

☆

द्रौपदीने विवाहोपरान्त अपना जीवन बड़े ही सुखसे बिताया था। उन्हें पाण्डवोंसे प्रतिविन्ध्यादि पुत्र भी थे। पाण्डवोंका सुख-ऐश्वर्य देखकर दुर्योधनके मनमें जलन होने लगी। फलस्वरूप उसने पाण्डवोंके साथ द्यूतका षड़यन्त्र रचा। द्यूतमें प्रवीण कपटी मामा शकुनिको आगे कर उसने युधिष्ठिरका सारा राज्य तो हड़प ही लिया, अन्तमें भाइयों-सहित उनको भी जीत लिया। दुर्योधनने द्रौपदीको सभामें बुलाना चाहा। उसे भी द्यूतमें जीत लिया गया था। यह कार्य विदुरजीको सौंपा गया। पर विदुरने यह नीच कर्म करनेसे इनकार कर दिया तो वह प्रतिकामीको सौंपा गया। लेकिन उसने भी इन्कार कर दिया।

अन्तमें यह कार्य उस कुकर्मी दुःशासनको सौंपा गया, जिसके लिए कोई भी बुरा कार्य, अकार्य नहीं था। दुःशासनका अन्तःपुरमें प्रवेश होते ही द्रौपदी डरसे इधर-उधर भागने लगी, लेकिन वह दुष्ट उसके केश पकड़कर खींच ही लाया। द्रौपदीके बहुत अनुनय-विनय करनेपर भी वह नहीं माना और झोंटे पकड़ उसने उसे सभामें लाकर पटक ही दिया। इसी समय द्रौपदीने प्रतिज्ञा की कि 'अपने केश दुःशासनके रक्तसे धोनेके बाद ही बाँधूगी।' अन्ततः उसकी यह प्रतिज्ञा पूरी होकर रही।

सभामें प्रवेश करते ही द्रौपदीने सबसे पूछा : 'पहले धर्मराज जब अपनेको दाँवपर लगाकर हार गये तथा अन्तमें मुझे दाँवपर लगाया, तो क्या मैं दासी बन गयी ?' इस प्रश्नका किसीने भी उत्तर नहीं दिया और सारी सभा उसे 'दासी-दासी' कहकर सम्बुद्ध करने लगी। तब भीम अपना क्रोध न रोक सके और उन्होंने सहदेवसे अग्नि मँगाकर धर्मराजके उन हाथोंको जलानेके लिये कहा, जिन्होंने द्रौपदीको दाँवपर लगाया था। बड़ी कठिनाईसे भीम शान्त हुए।

धृतराष्ट्रके पुत्र विकर्णने कहा : 'हारे हुए धर्मराजने जब द्रौपदीको दाँवपर लगाया तब तो वह सचमुच नहीं जीती गयी।'

द्रौपदीकी यह नैतिक विजय देखकर कर्ण सामने आकर बोला : 'सम्पूर्ण सम्पत्ति दाँव

पर लगानेके बाद द्रौपदी कैसे अजित रह सकती है ? इसके सिवा कई पतिओंकी पत्नी होनेके कारण यह पत्नी न होकर दासी ही है ?'

दुर्योधनने कहा : 'देर क्या कर रहे हो ? दुःशासन ! द्रौपदीके वस्त्र खींच लो और पाण्डवोंके वस्त्र भी उतार लो ।'

पाण्डवोंने अपने शरीरपर एक-एक वस्त्र छोड़कर अन्य सभी वस्त्र उतार दिये ।

भीम क्रोधसे लाल हो उठे, पर कुछ भी नहीं कर पा रहे थे। नीच दुःशासनने द्रौपदीके वस्त्रोंको खींचना शुरू कर दिया ।

द्रौपदीने वहुत प्रार्थना की, पर किसीने एक न सुनी । जब उसने देखा कि कोई मेरी सहायता नहीं कर रहा है, तो आर्त होकर श्रीकृष्णको पुकारा :

हे कृष्ण द्वारिकावासिन् व्रजनाथार्तिनाशन ।
कौरवार्णवमग्नां मां किं न पश्यसि केशव ॥

अर्थात् 'द्वारिकामें वैठे कृष्ण ! व्रजकी विपत्ति दूर करनेवाले कृष्ण ! क्या कौरवोंके समुद्रमें डूबती मुझ द्रौपदीको नहीं देख रहे हो ?'

सत्यकी रक्षा करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णने द्रौपदीकी पुकार सुन ली और उसका चीर बढ़ाया—उसकी लाज वचानेके लिए स्वयं चीररूप हो गये । एकके वाद एक, अनेक चीर उत्पन्न होते चले गये । अन्तमें दुःशासन थककर वैठ गया । राजसभामें वस्त्रोंका ढेर लग गया, मगर द्रौपदीका चीर दस सहस्र हाथियोंके बलवाला दुःशासन खींच नहीं पाया :

दस हजार गजबल घट्यो, घट्यो न गजभर चीर ।

अन्तमें धृतराष्ट्रने दुर्योधनको फटकारा और द्रौपदीको इच्छित वर देकर पतियोंके साथ उसे मुक्त कर दिया ।

●

लोक-संग्रह

श्रेष्ठ पुरुष जैसा आचरण करता है, दूसरे लोग भी वैसा ही करते या करना चाहते हैं, अतः उसे कोई ऐसा काम नहीं करना चाहिये, जो दूसरोंके समक्ष अनुचित उदाहरण प्रस्तुत करे । भगवान् श्रीकृष्णको न तो कुछ अप्राप्त था और न कुछ प्राप्त करनेकी आवश्यकता थी; तो भी वे सदा सत्कर्ममें—परहित-साधनमें संलग्न रहे । वे लोक-संग्रही थे । लोगोंको अपने साथ कर्मयोगके पथपर ले चलना चाहते थे ।

●

नीति-वचनामृत

१

विद्वत्त्वं च नृपत्वं च नैव तुल्यं कदाचन ।
स्वदेशे पूज्यते राजा विद्वान् सर्वत्र पूज्यते ।।

भूपपनो पंडितपनो कबहुँ न होत समान ।
भूप पूजिअत देश निज पंडितजन सब थान ।।

२.

राजा तुष्टोऽपि भृत्यानामर्थमात्रं प्रयच्छति ।
ते तु संमानितास्तस्य प्राणैरप्युपकुर्वते ।।

देत तुष्ट नृप भृत्यको अर्थमात्र उपहार ।
मानित वे नृपको करत प्रानहु ते उपकार ।।

३.

वैरिणा न हि संदध्यात् सुश्लिष्टेनापि संधिना ।
सुतप्तमपि पानीयं शमयत्येव पावकम् ।।

रिपुसों मेल न कीजिये दृढ संधिहु अपनाय ।
खौलत हू जल अनलको निहचै देत बुझाय ।।

सूक्ति-सुधा

जरावस्थाके दोष

गात्रं संकुचितं गतिर्विगलिता दन्ताश्च नाशं गताः

दृष्टिर्भ्राम्यति रुपमत्युपहतं वक्त्रं च लालायते ।

वाक्यं नैव करोति बान्धवजनः पत्नी न शुश्रूषते,

धिक् कष्टं जरयाभिभूतपुरुषं पुत्रोऽप्यवज्ञायते ।।

चल्यौ है न जात गात संकुचित होत जात

गिरि जात आननके आविकल दाँत हैं,

घूमति नयन-दृष्टि रूपहू कुरूप होत

मुख द्वारहू ते लार टपकत जात है ।

वचन न मानैं वन्धु-वान्धव स्वजन सव

सेवा करिवेमें पतनीहू सकुचात है,

धिक्-धिक् कष्ट जरा-जीर्ण जो पुरुष होत—

वाके अपमानमैं न पुत्रहू लजात है ।।

•

श्रीकृष्ण-जन्मस्थान-सेवासंघ मथुराके लिए देवधरशर्मा द्वारा आनन्दकानन प्रेस, दुण्ढिराज, वाराणसी-१ में मुद्रित एवं प्रकाशित